संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

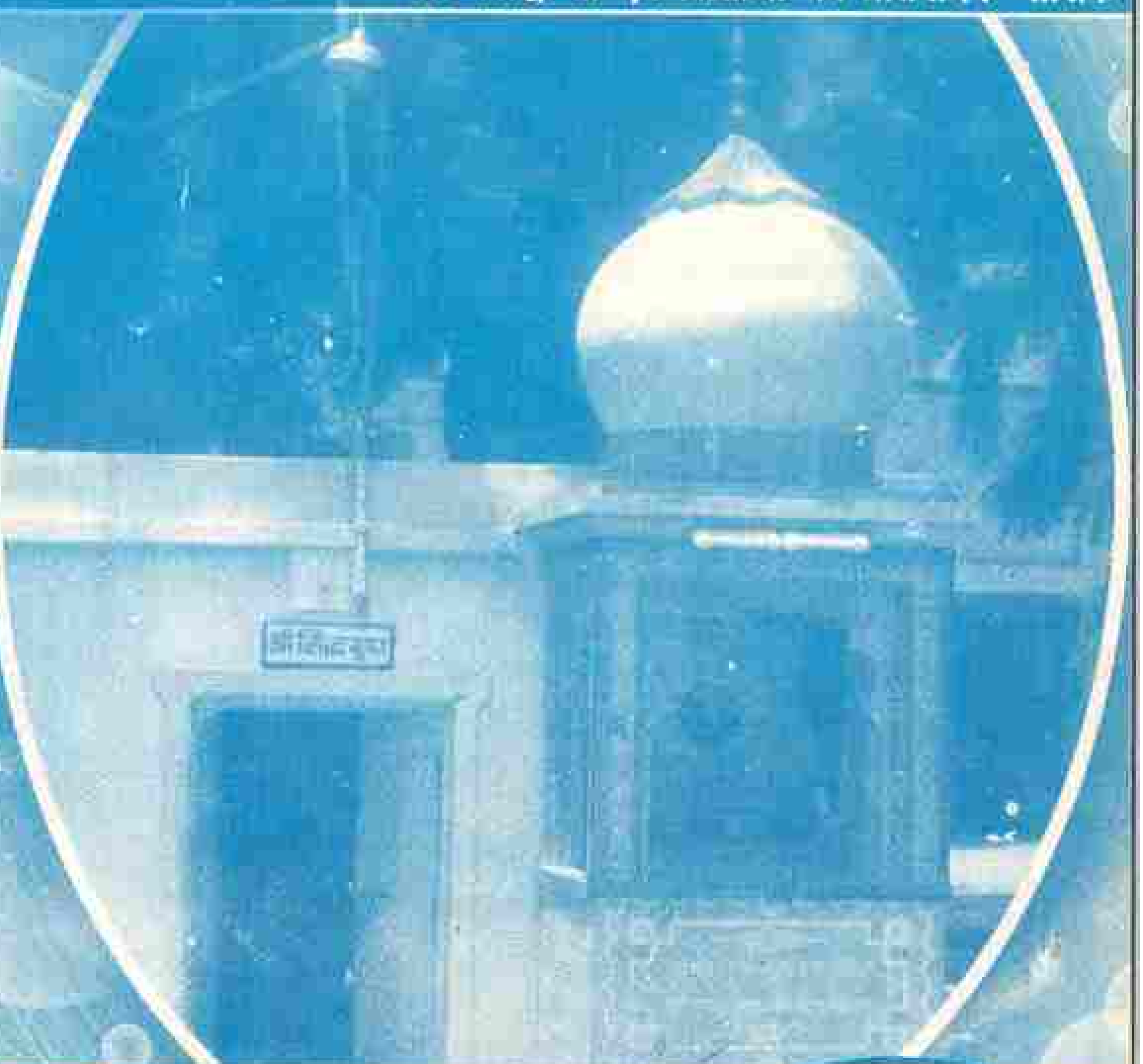

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 8
नवम्बर, 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) रामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- अस्मितानुगत समाधि (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 10
- पास तुम्हारे आता हूँ —कृष्णकान्त 13
- महायोगेश्वर का प्रादुर्भाव दिवस —अवनीश कुमार भटनागर 14
- सद्गुरु सम्पूर्ण ग्रन्थों में —वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर) 19
- प्रभु चरणों में समर्पित —राजेश कुमार श्रीवास्तव (बलिया) 22
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति (१३) —कु० रुक्मिणी वर्मा 23
- चिज्जड़ ग्रन्थि —जनक कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर) 30
- दो शब्द गुरुभाइयों से —उदित नारायण तिवारी (कानपुर) 33
- काल गणना — जे० पी० शर्मा (पोंटवा साहिब) 36

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38 अंक 8 — नवम्बर 2005

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु तहतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठा। मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

भावार्थ

अर्थात्—हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा ! मेरी वाक् इन्द्रिय मन में स्थित हो जाये। मेरा मन वाक् इन्द्रिय में स्थित हो जाये। हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! मेरे लिए तू प्रकट हो। हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेदविषयक ज्ञान को लाने वाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान मुझे न छोड़े। इस अध्ययन के द्वारा मैं दिन और रात्रियों को एक कर दूँ, मैं श्रेष्ठ शब्दों को ही बोलूँगा, सत्य ही बोला करूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे। वह रक्षा करे मेरी और मेरे आचार्य की।

अमृतकण

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद २/२/९)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

✿ ✿ ✿

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।।

(मुण्डकोपनिषद् १/२/१०)

ईष्ट और पूर्त सकाम कर्मों को ही श्रेष्ठ मानने वाले अत्यन्त मूर्ख लोग उससे भिन्न वास्तविक श्रेय को नहीं जानते, वे पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग के उच्चतम स्थान में जाकर श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप वहाँ के भोगों का अनुभव करके इस मनुष्य लोक में अथवा इससे भी अत्यन्त हीन योनियों में प्रवेश करते हैं।

✿ ✿ ✿

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टः ततः तेन अमृतत्वम्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् १/६)

इस सबके जीविकारूप सबके आश्रयभूत विस्तृत ब्रह्मचक्र में जीवात्मा को घुमाया जाता है। वह अपने आपको और सबके प्रेरक परमात्मा को अलग-अलग जानकर उसके बाद उस परमात्मा से स्वीकृत होकर अमृत भाव को प्राप्त हो जाता है।

✿ ✿ ✿

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् २/११)

परमात्मा की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले योग में पहले कुहरा, धुँआ, सूर्य, वायु और अग्नि के सदृश तथा जुगनू, बिजली, स्फटिक-मणि और चन्द्रमा के सदृश बहुत से दृश्य योगी के सामने प्रकट होते हैं। ये सब योग की सफलता को स्पष्ट रूप से सूचित करने वाले हैं।

✿ ✿ ✿

विशेष लेख

अस्मितानुगत समाधि

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आनन्दानुगत समाधि में साधक में महाभावों का उदय हुआ करता है। वह अपने इष्टदेव का सर्वत्र दर्शन किया करता है। **'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वम् च मयि पश्यति'** वाली बात उस साधक की हो जाती है। एक बार लाहौर में एक रास मण्डली गयी। एक वैश्य के लड़के ने रास में जो कृष्ण बनता था उस लड़के की फोटो लेनी चाही। परन्तु रासधारियों ने इसकी अनुमति नहीं दी। वह लड़का निराश होकर किसी शिवालय में जाकर बैठ गया और नमः शिवाय का जाप करता हुआ जप करने लगा। स्वाध्याय के फलस्वरूप एक माला भगवान शंकर के पिण्डी से गिरी। आकाशवाणी हुई वृन्दावन चले जाओ। वह लड़का वृन्दावन चला गया। मैं उन दिनों श्री वृन्दावन ही रहा करता था। हमने उसे मोती झील में पड़ा देखा तो मैंने उसे जगाया। मैंने उससे पूछा–तुम कैसा अनुभव कर रहे हो ? उसने बताया मुझे भगवान कृष्ण के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता। मैंने पूछा यह पहाड़ देख रहे हो, मकान देख रहे हो ? उसने कहा नहीं मुझे सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखायी देते हैं। उन्होंने मुझ से कहा–आप भी बहुत ऊँची स्थिति के हैं। भगवान के पूर्ण कृपापात्र हैं। उसके भाई की दुकान थी वह बताता था कि वे इसी हालत में पड़े रहते हैं। भगवान शिव के शक्ति पात से वह आनन्दानुगत समाधि को पाकर सर्वत्र इष्ट दर्शन करता था। अस्तु।

आज के अपने व्याख्यान में मैं तुम्हें अस्मितानुगत के विषय में बताऊँगा। अस्मितानुगत समाधि में योगी अखण्ड मण्डलाकार तेज ही तेज देखता है। इसके अतिरिक्त किसी नाम रूप को नहीं देखता। विशुद्ध तेज में तदाकार कारित होकर अपने आपको प्रकाश स्वरूप देखता है। यह सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा है। यह भी देखने व अनुभव का विषय होने से निर्बीज समाधि नहीं है। जो बीज अनुभव में आती है मन अनुभव करता है वह निर्बीज निस्त्रैगुण्य स्थित नहीं हुआ करती। गुणातीतावस्था में तो कुछ भी अनुभव नहीं होता।

हमारे बड़े गुरु भाई योगिराज मुल्खराज जी महाराज की पत्नी का देहान्त हो गया, वह रोये नहीं। किन्तु जब पत्नी के भाई बन्धु आकर रोते थे तो वह भी रो पड़े। ऐसा करने पर उन्होंने देखा–कि एक दिव्य विमान आकाश से उतर कर उनके सामने आ गया। उनकी धर्मपत्नी उस में विराज रही थीं। वह कहने लगीं–स्वामी ! प्रभु ने आप के कारण मुझे दिव्य लोक दे दिया है; किन्तु आपके आँसुओं ने मुझे यहाँ आने को बाध्य कर दिया।

इस पर मुल्खराज जी महाराज ने कहा–मुझसे भूल हुई है, अब तुम अपने लोक को लौट जाओ। श्री प्रभु जी श्री मुल्खराज महाराज के मोह को भंग करना चाहते थे। **'गुरोस्तु मौनम्व्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्न संशयाः'** गुरुदेव अन्तर्यामी रूप से शिष्यों के संशय दूर करते रहते हैं। प्रभु जी ने मुल्खराज जी को ध्यान में बिठा दिया। ध्यान में ही प्रभु जी ने उनसे कहा–मेरी ओर देख ! मुल्खराज जी ने कहा–प्रभु ! आप ब्रह्मा रूप में हैं। फिर देखो–प्रभु जी आप विष्णु रूप हैं, फिर देखो, आप शिव रूप हैं। फिर देखा–अखण्ड मण्डलाकार प्रकाश है प्रकाश है, नाम व रूप का कोई तत्व इसमें नहीं है। मैं भी इसी प्रकाश में लीन हूँ। श्री प्रभु जी ने समझाया–यह तत्व है जिसको पाकर दोबार लौटना नहीं होता। नाम रूप समाप्त होने के बाद आत्मिक सत्ता उस तेज में विलीन हो जाती है। अस्मितानुगत समाधि में अस्मि, अस्मि' मैं हूँ, मैं हूँ ऐसी एक ही वृत्ति शेष रहती है। इस वृत्ति को निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति स्वयं भी खत्म होना चाहती है। यह भी त्रिगुणात्मिका ही है इसके दृढ़तर अभ्यास के बाद गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाता है। निर्बीज में पुरुष (आत्मा) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस अस्मितानुगत समाधि की परिपुष्टि के साथ–साथ दो सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है जिसमें पहली सिद्धि है **'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा' ऋतं सत्यं बिभर्ति या सा ऋतम्भरा'।** सत्य को ही धारण करने वाली बुद्धि को ही ऋतम्भरा बुद्धि कहते हैं। **'यां मेधां देव गणाः पितरश्च उपासते'** यही देवताओं और पितरों द्वारा उपास्य मेधा है जो योगी को अस्मितानुगत की पुष्टि होने पर मिला करती है। जिस योगी को ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त हो जाती है वह जो देखता है सत्य देखता है, जो सुनता है सत्य सुनता है। उनके मन में सत्य ही आता है। ऐसा व्यक्ति ही सिद्धान्तों का निर्णायक बन सकता है। इस समाधि वाले योगी की वाणी 'अमोघः अस्य वाक् भवति' अमोघ होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कार अन्य समस्त संस्कारों को रोक लेते हैं। 'तज्जः संस्कारों' अन्य संस्कार प्रतिबन्धी ऋतम्भरा का संस्कार अन्य संस्कारों को काट देता है। ऋतम्भरा प्राप्त योगी संस्कारों के आधीन नहीं रहता प्रत्युत संस्कार उसके आधीन हो जाते हैं। दूसरी ताकत योगी को मिलती है चित्त निर्माण की **'निर्माणचित्तान्यस्मिता मात्राद्'** योगी अपने हजार चित्त बना सकता है और एक समय में ही अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग व्यक्तियों से बातचीत तथा व्यवहार कर सकता है। मैंने तुम्हें कई बार अपने बचपन के साथी श्री अगडधत्ता के बारे में बताया है। श्री वृन्दावन में हम दोनों साथ–साथ रहते थे। उसकी चित्त निर्माण की योग्यता मैंने देखी थी। सारा प्रकरण तुम लोगों को मालूम ही है। इसका विस्तृत विवरण हमने 'आठ योगी' नाम पुस्तक में दिया है। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी हमारे गुरुभाई–बहनों को ध्यान में बैठा कर चित्त बनाने की आज्ञा दिया करते थे। किसी से कहते थे तुम यह देखो अमुक के मन में क्या भाव आ रहे हैं ? जिस व्यक्ति के मन के भावों को जानना होता था उसे पहले ही कागज में लिखा लिया

करते थे। ऐसे अलग–अलग साधकों को अलग–अलग व्यक्तियों के मनोभावों को जानने में लगा दिया करते थे। इसमें सभी तो सफल नहीं रहा करते थे किन्तु जो ऊँची स्थिति वाले थे वे सफल हो जाते थे। ध्यान से उठकर साधक श्री प्रभु जी के उस व्यक्ति के मनोभावों को बता दिया करता था। उधर श्री प्रभु जी के पास कागज में पहले ही लिखा रहता था। उससे मिलान कर लिया जाता था। इस प्रकार से जो अस्मितानुगत की पूर्णता वाले योगी होते हैं, वे चित्त निर्माण कर लिया करते हैं। चित्त निर्माण की योग्यता आ जाने के बाद कालान्तर में जब योगी चाहे तो काय निर्माण की योग्यता भी आ जाती है। भगवान पतंजलि ने योगदर्शन में योग की परिभाषा **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** कह कर की है। **'चित्तवृत्तीनाम् नितरां रोधः योगः'** अर्थात् चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध योग कहलाता है। व्युत्थान अवस्था में हमारा मन भिन्न–भिन्न विषयों को ग्रहण करता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार **'युगपदनेकज्ञानानुपत्तिर्मनसो लिङ्गम्'** अर्थात् जो एक समय में एक ही ज्ञान रखने वाला है, उसे मन कहते हैं। मन से फूल देखना चाहा–चक्षु ने रूप दर्शन करा दिया, क्योंकि चक्षु अग्नि का केन्द्र है। अतः वह ही रूप दर्शन में समर्थ है। उस समय हमें मन चक्षु एवं फूल के संयोग से फूल का ज्ञान हुआ। इतने में किसी ने हमें स्पर्श किया हमें स्पर्श ज्ञान होने लगा। उस समय रूप ज्ञान समाप्त हो गया। पुनः किसी ने इत्र सुंघाया घ्राणेन्द्रिय की सहायता से मन को इत्र गन्ध का ज्ञान हुआ, उस समय हमारा स्पर्श ज्ञान समाप्त हो गया। इसी प्रकार से क्षण–क्षण में हमारे मन को अलग–अलग विषयों का ज्ञान होता रहता है। जहाँ–जहाँ इन्द्रियों ने मन को फैलाया, वहाँ–वहाँ वैसे–वैसे रूपवाला बन गया। जैसे नदी का प्रवाह चलता है। एक लहर में फूल बह कर आया दूसरी लहर में लकड़ी बह कर आई–तीसरी लहर में पत्ते बह कर आए। हर लहर एक दूसरी लहर से भिन्न है। इसी प्रकार से मन की वृत्तियाँ हैं। एक समय में मन में एक ही ज्ञान रहता है। इसलिए मन को चंचल कहा गया है। क्षण–क्षण में इसे अलग–अलग ज्ञान होते रहते हैं। सत्व रज एवं तमोगुण से चित्त वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। एक–एक गुण से एक प्रकार की, दूसरे गुण से दूसरे प्रकार की वृत्ति पैदा होती है। गुण वैचित्र्य के कारण ही संसार में जितने भी प्राणी हैं सब भिन्न–भिन्न स्वभाव वाले हैं। सब का स्वभाव अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार है उनकी चेष्टाओं में भिन्नता रहती है। त्रिगुण से ही सब वृत्तियाँ चलती हैं।

चित्त वृत्ति निरोध का अर्थ चित्तवृत्तियों का बिल्कुल खत्म हो जाना अथवा चित्त वृत्तियों का बिल्कुल रुक जाना नहीं है। जब तक मन का ही नाश नहीं होता, तब तक वृत्तियों का नाश नहीं होता–मन के नाश होने पर ही 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी' की उक्ति चरितार्थ हो सकती है।

योग का लक्ष्य चित्तवृत्ति का नितरां रोध है। यह चित्त नाश से ही संभव है। योग दर्शन में किसी एक विशेष देवता की उपासना करने को नहीं कहा गया है। हिन्दु–मुसलमान,

पारसी–ईसाई आदि एक समुदाय विशेष के लिए ही उपासना का विधान नहीं है। यह सबके लिए, मनुष्य मात्र के लिए है। अतः सार्वभौम साधना है। चित्तवृत्तियों का निरोध समाधि से होता है **'समाधि वै योगः'**, **''योगः समाधि समाधि समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः''** जीवात्मा परमात्मा की एकरूपता एकावस्था को प्राप्त होना ही समाधि है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए ही सब उपाय बताए हैं योग दर्शन का सिद्धान्त है **''सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्''** बुद्धि और पुरुष की शुद्धि होने पर कैवल्य प्राप्त होता है। कैवल्य का अर्थ है अकेलापन केवलीभाव। वही समाधि है, वही योग तथा स्वरूपावस्था है। जहाँ चित्तवृत्ति नहीं रहेगी वहाँ आत्मा अकेलेपन में आ जाएगा। आत्मा का स्वरूप गीता में भगवान ने–

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्ऽविकार्योऽयमुच्यते
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

आदि वचनों से समझाया है।

उपनिषदों पुराणों में भी आत्मा के स्वरूप का निरूपण ऐसे ही किया गया है। जीवावस्था में हमें सर्दीगर्मी भूख–प्यास आदि दैविक–आधिभौतिक दुःख सताते रहते हैं। हम जितने विलासिता के साधन जुटाएँगे उतने ही कष्ट में रहेंगे। देखो ! हमारा मुख हमेशा खुला रहता है मुख को सर्दी नहीं लगती है। सर्दी के मौसम में भी हम मुख में सर्दी अनुभव नहीं करते। कारण यह है कि हमने इसे जन्म से खुला रखा है। इसका स्वभाव ही इस प्रकार का हो गया है गर्मी भी कम लगती है। आत्म स्वरूप के अन्दर दुःख सुख का भान नहीं होता है। अभी हमें निरन्तर सुख–दुःख सताते रहते हैं क्योंकि हमें बौद्धेय ज्ञान है। इसे गुणात्मक ज्ञान [illegible]ना चाहिए। आत्मा में एक दोष आ गया है आत्मा और बुद्धि की गांठ बन गई है। आत्मा ने अपना रूप बुद्धि को दे दिया बुद्धि ने अपना रूप आत्मा को दे दिया–इससे दोनों ही दुखी हैं। आत्मा एक निर्मल ज्योति है–बुद्धि सामने आई। लाल रंग का फूल है आत्मिक शीशा निर्मल है। फूल सामने आने पर शीशा लाल दिखाई देता है। नीला शीशा है आत्मिक ज्योति नीली दिखाई दी। इसी प्रकार से बुद्धि ने आत्मा से चेतनता ली और अपने सुख–दुःखादि भोग आत्मा को दिए। यदि बुद्धि सामने से हटा दी जाए तो आत्मा निर्मल ज्योति ही है। आत्मा के सामने से आवरण हटा देना ही योग दर्शन का लक्ष्य है। शक्ति किस प्रकार बढ़ जाया करती है, योग दर्शन में इसका विशद् वर्णन है। प्रकृति में बुद्धि में भी बहुत ताकतें हैं। योगी आकाश में उड़ता है अग्नि में प्रवेश करता है सब कुछ करने की ताकत रखता है। ये सारी ताकतें गुणात्मिका तथा प्रकृति पर हकूमत करने पर आती हैं। योगी का **''परमाणु परम् महत्तत्वान्तोऽस्य वशीकारः''** जितना भी प्रकृति में परिवर्तन हो सकता है, वह योगी कर सकता है।

हमारे गुरूदेव आनन्दकन्द श्री प्रभु जी अपने मुखारविन्द से कहा करते थे कि हिमालय में ऐसे-ऐसे योगी हैं जिन्होंने अपने संकल्प मात्र से सृष्टि की रचना की हुई है। जब उस सृष्टि का लय करना चाहे तो स्वांस अन्दर खींच ली और प्रलय हो गया। फिर पता नहीं चलता है कि देखने वाले स्त्री-पुरुष कहाँ चले गये। प्रकृति पर अधिकार से ही यह सब सम्भव होता है।

योगी में अष्टविध अणिमादि सिद्धियाँ आ जाती हैं। ये सब गुण-विस्तार हैं। प्रकृति विस्तार है। ये सब प्रकृति में है। आत्मा में ये सब कुछ नहीं है। आत्मा न सिद्धि शक्तिवाला है न बिना सिद्धि शक्ति वाला है। आत्मा निर्विकारी है। उसमें कोई विकार नहीं आता है। योग दर्शन में दृष्टा जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन तीसरे सूत्र में किया गया है-**'सदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थान्' 'तस्मिन् स्थितो समाधौ द्रष्टुः आत्मनः स्वरूपेऽवस्थाम'** तब निर्विकल्प समाधि में अपने स्वरूप में ठहर जाया करता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि **'स्वरूपप्रतिष्ठा कीदृशी'** स्वरूप प्रतिष्ठा होने पर आत्मा की अवस्था कैसी होती है ? व्यासदेव जी ने भाष्य में उसका उत्तर दिया है। **'चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये'**। चेतन शक्ति जैसे कैवल्यावस्था में होती है। वैसे ही निर्विकल्प समाधि में होती है। जो उसका अपना स्वरूप प्रतिष्ठा है। उस के प्राप्त होने पर आत्मा केवली भाव में होता है।

योगी जब समाधि लगाता है तो वह प्राणकोश को ऊपर ले जाकर शुद्ध स्वरूप में ठहर जाता है। उससे प्राकृत सम्बन्ध सब छूट जाता है। थोडी देर के लिए समझने के लिए हम उदाहरण से समझ सकते हैं। यद्यपि उदाहरण एकांशी हुआ करता है। उदाहरण पूर्ण रूपेण घटित नहीं हुआ करता। रात्रि में हम सो जाते हैं। लोगों को स्वप्न आते हैं वे स्वप्नावस्था में भी उन-उन विषयों को देखते रहते हैं जिन का चिन्तन दिन भर का बना हुआ होता है। कुछ लोगों को स्वप्न नहीं आते वे प्रगाढ़ निद्रा में चले जाते हैं। इसे सुषुप्ति कहते हैं इस अवस्था में हमें अपने घर-मकान, स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव कुछ भी याद नहीं रहते इसमें मन भी कार्य करना बन्द कर देता है। प्रातःकाल निद्रा से उठ जाने पर हमें घर-मित्र, पुत्र आदि सब याद आ जाते हैं। किन्तु यह निद्रा भी एक वृत्ति है। क्योंकि प्रातःकाल उठने पर हमें सुख-दुःख का अनुभव होता है। हम कहते हैं, **सुखमहमस्वाप्सम्, दुःखमहमस्वाप्यम् ''गुरूणि मे गात्राणि''** मैं सुखपूर्वक सोया, मैं दुःख पूर्वक सोया, मेरा शरीर भारीपन महसूस कर रहा है। इस प्रकार की अनुभूति रहती है। अतः यह भी एक वृत्ति है-निद्रा का लक्षण है। **'अभाव प्रत्ययावलम्बनम् वृत्ति निद्रा'** – निद्रा भी एक वृत्ति है। सुषुप्ति में सांसारिक ज्ञान समाप्त हो जाता है।

'अभाव प्रत्ययावलम्बनम् वृत्तिर्निद्रा' अभाव ज्ञान का अवलम्ब लेने वाली वृत्ति निद्रा है। उस समय ऐसा लगता है न जगत था, न है। उस समय जाग्रतावस्था की बातों का ज्ञान नहीं रहता अभी हम बुद्धि के नाच नचाने पर चल रहे हैं। बुद्धि सब खेल खेल रही

है। बुद्धि ही हमें स्त्री–पुरुष, सुखी–दुःखी आदि बनाती रहती है। आत्मा न सुखी न दुःखी, न स्त्री है, न पुरुष है, न छोटा होता है न बड़ा होता है। वह तो निर्विकारी है। इस स्थिति को योगी समाधि द्वारा प्राप्त करता है। समाधि में जीव एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं रहता। इन दोनों में कोई विकार नहीं होता।

योगी हजारों वर्षों तक समाधि में बैठे रहा करते हैं। समाधि से उठ जाते हैं तो **"वृत्ति सारूप्यमितरत्र"** जैसी प्रकृति–स्वभाव होता है वैसे चेष्टा करता है **"सदृशं चेष्टते स्वस्याः।"** यदि कोई आत्मा का स्वरूप जानना चाहता है तो वह समाधि लगाना सीख जाए तो आत्मा स्वरूप को अनुभव कर सकता है। समाधि से नीचे आने पर उस स्थिति को बता नहीं सकता। निर्बीज समाधि में प्रकृति का कोई बीज नहीं रहता।

समाधि में योगी को समय का कोई ज्ञान नहीं रहता। हजार वर्ष की समाधि काल भी उसे क्षण के समान लगता है। यह निर्बीज समाधि में होता है। जो लोग भू–समाधि आदि लगाते हैं यह कोई समाधि नहीं है। शास्त्रीय सिद्धांत में इसे समाधि नहीं माना जाता। हाँ–थोड़ा बहुत प्राण शक्ति पर अधिकार सा होता है कई एक जमीन में ही मर जाते हैं। कोई–कोई जिन्दा बच निकलता है। अस्तु।

आनन्दकन्द श्री प्रभु जी दो बच्चों की बातें बताया करते थे। प्रभु जी अपने नाम से घटनायें कम ही बताया करते थे। घटनायें प्रायः उन्हीं की होती थी। घटनायें सुनाना एक प्रकार से योग सिद्धान्तों को समझाने का एक ढंग होता है।

श्री प्रभु जी बताते थे कि एक स्थान पर कोई महात्मा पहुँचे। दो बच्चे उनके सामने आए। बहुत ही विनीत भाव से उन दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। प्राणी पूर्वकृत सत्कर्मों के फलस्वरूप अहंकार को त्यागकर महापुरुषों के प्रति आत्मसमर्पण कर ले तो वह सब कुछ पा लेता है। २ बलपूर्वक प्राप्त नहीं की जा सकती गीता कहती है– 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' श्रद्धालु व्यक्ति ही ज्ञान व शक्ति को पाया करता है।

महात्मा ने कृपा कर दोनों बच्चों पर शक्तिपात कर दिया। उनकी समाधि हो गई। इस अवस्था में चार सौ वर्ष तक बैठे रहे। इस अवस्था में योगी के प्राणकोष ऊपर ब्रह्माण्ड में चढ़ जाते हैं। प्राणस्पन्दन भी कम मात्रा में होता है। शरीर क्षीण व जर्जर हो जाया करता है। केवल मात्र जीवनी शक्ति बनी रहती है। समाधि से उठने के बाद उन्हें अपने घर मकान, माता–पिता याद आने लगे। परन्तु उन्हें न अपना कोई घर मिला, न पुरानी गलियाँ मिली। सब कुछ परिवर्तित हो चुका था। अन्त में एक अत्यन्त वृद्ध पुरुष वहाँ आया। वह प्रणाम करने लगा व कहने लगा–जिन व्यक्तियों का तुम नाम ले रहे हो वह तो मेरे परदादा थे। मैं उनकी चौथी–पाँचवीं पीढ़ी में हूँ। परन्तु उन बच्चों को ऐसा लग रहा था कि वे अभी–अभी समाधि में बैठे हों। यह बात निर्बीज समाधि की थी।

जब हमने पहले–पहले योग प्रचार आरम्भ किया उस समय साधकों पर गहरे

शक्तिपात हुए! उनकी बड़ी ऊँची-ऊँची ध्यानस्थितियाँ बनी। करनाल जिले के सालवन गाँव में एक क्षत्रिय लड़का साधूराम हमारा दीक्षित साधक था। उसको हमने शाम ही आरती के बाद ध्यान में बैठाया। वह इसी अवस्था में दो दिन दो रात बैठा ही रहा। बहत्तर घण्टे इस प्रकार बैठने पर हमने सोचा कि इसके पेट में मल-मूत्र सड़ रहा होगा अतः उठा देना चाहिए। हमने उसके प्राणकोष नाड़ियाँ मल कर नीचे उतार कर उसे चेतना दी। उठने पर वह कहने लगा— गुरूदेव ! आपने यह अच्छा नहीं किया जो मुझे इतनी जल्दी ध्यान से उठा दिया। अभी तो आरती की ज्योति चल रही है। मैं आरती के बाद ही तो ध्यान में बैठा था-इस पर उपस्थित साधकों ने कहा साधुराम ! तुम्हें इस अवस्था में बैठे दो दिन रात हो गए हैं। किन्तु साधुराम को ऐसा लग रहा था कि वह कुछ क्षण पहले ही ध्यान में बैठा था। समाधि में योगी को समय व संसार का कोई ज्ञान नहीं रहता है। हिमालय में निर्बीज समाधि वाले बहुत से योगी हैं जो कई-कई हजार वर्षों से बैठे हैं। कुछ दिन पूर्व हमने एक अखबार पढ़ा था। उसमें लिखा था कि अंग्रेज भारतीय योगियों की खोज में बद्रीनाथ की ओर गया। वहाँ उन्होंने एक योगी को देखा-उस योगी के साथ स्त्रियाँ भी थीं। वे सब युवा जैसे लगते थे। उन्होंने बताया कि वह अकबर के समय से यहाँ समाधि में रहा करते हैं। इस समय किस का राज्य है हमें ज्ञान नहीं है। जो भूतजयी होते हैं वे अपने शरीर को हजारों वर्षों तक इसी प्रकार रख सकते हैं।

यदि एक योगी खाता-पीता है-शुद्ध स्वरूप में नहीं रहता उसका शरीर भी बदलता रहेगा-क्षीण होता रहेगा तथा नाश भी होता रहेगा।

जो लोग छोटी-छोटी साधनायें करते हैं वह भी लम्बी आयु को पा जाया करते हैं। भारत में देवरहा बाबा का उदाहरण सामने है। वह इस समय कम से कम डेढ़ सौ से अधिक वर्ष के हैं। शास्त्रीय नियम के अनुसार तो 'शतायु वै पुरुषः' आदमी की आयु सौ वर्ष होती है। किन्तु खेचरी मुद्रा के प्रभाव से उनकी दीर्घायु है।

श्री वृन्दावन में हमें एक साधु मिला उनकी आयु एक सौ पच्चीस वर्ष की थी। उन्होंने बताया कि शीतली प्राणायाम के अभ्यास से ही उनकी इतनी आयु है।

योग दर्शन का लक्ष्य-प्रकृति और पुरुष अपने-अपने स्वरूप में आ जाये यही है। इनके अपने-अपने स्वरूप में अवस्थित होने पर ही केवलीभाव होता है। आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। इसलिए इस पवित्र योगोपदेश को सुनकर अपने को अमरत्व की ओर ले जाओ। मनुष्य जीवन में ही इस प्रकार की कमाई की जा सकती है। मरने के समय जो दुःख होता है वह पाप का फल है। फल में भी बीज रहा करते हैं। जो पुनः दुःख देंगे। दुःखमयी वृत्ति से वैसे ही संस्कार बनेंगे। पाप योनियों में चले जायेंगे। अतः सचेत हो जाओ। परम चेतन को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो जाओ।

सब पर प्रभु जी की कृपा होगी। पूरा-पूरा आशीर्वाद।

❋❋❋

• सम्पादकीय

सेवा धर्मो परम गहनः

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

सेवा धर्मो परम गहनः योगिनामप्यगम्यः

अर्थात् सेवा धर्म परम गहन है योगी जन भी इसके रहस्य को नहीं जान पाते। उक्त कथन योगिराज भतृहरि जी महाराज के हैं। भतृहरि जी स्वयं एक राजा थे किन्तु कालान्तर में सिद्धयोगी के चरणों में आ गये और सिद्ध कृपा से योगीराज बन गये। वे पहले राजा बनकर प्रजा के स्वामी रहे किन्तु योगमार्ग में आने पर गुरुचरणों के सेवक बन गये। गुरु सेवा कितनी कठिन होती है इस बात को समझते थे इसलिए कह गये गुरु सेवा अत्यन्त कठिन कार्य है योगी जन भी गुरुसेवा के याथार्थ्य को नहीं जान पाते। गुरुसेवा करते हुये शिष्य को शारीरिक तप तो करना ही होता है किन्तु अपने मन एवं वृत्ति को संयत रखना और कठिन बात है। सेवा के रूप में समाज में देश सेवा, माता–पिता की सेवा तथा गुरुजनों की सेवा तथा गुरुदेव की सेवा आदि–आदि सेवायें हैं।

सेवा हमेशा निःस्वार्थ होती है। इसमें बदले में कुछ नहीं माँगा जाता। सेवा करना ही धर्म है इस भाव से सेवा की जाती है। देश सेवा के लिये महापुरुषों ने अपना सर्वस्व लगा दिया। ऐसे लोग नर में ही नारायण सेवा की अनुभूति वाले होते हैं। दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा जानकर ही सेवा की जा सकती है। इसी प्रकार से माता–पिता की सेवा भी सन्तान का मुख्य नैतिक कर्तव्य है। सन्तान के पालन–पोषण में माता–पिता को जो कष्ट उठाना पड़ता है उस से सन्तान कभी उऋण नहीं हो सकती। आज बहुत से ऐसे लोग हैं, जो वृद्ध माता–पिता को असहाय छोड़कर उन्हें दर–दर भटकने को मजबूर कर रहे हैं। यह मनुष्य के हित में नहीं है। इतिहास साक्षी है कि जिन लोगों ने तन मन से माता–पिता की सेवा की है उन्होंने जीवन में समृद्धि, यश, सुख, विद्या और दीर्घायुष्य पाया है। इस प्रकार की सेवा में भक्त श्रवण कुमार का नाम सर्वप्रथम आता है। माता–पिता की सेवा से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और वह अनन्त काल तक स्वर्गीय सुख को प्राप्त करता है। गीता में देव, द्विज, प्राज्ञ एवं गुरु की सेवा को शारीरिक तप कहा है। बिना तप के सेवा होती ही नहीं है।

अध्यात्म मार्ग के पथिक को गुरुसेवा से ही उत्कृष्टता मिलती है। **'नातपस्विनो योगः सिद्धयति'** जो तपस्वी नहीं है उसे योग सिद्ध नहीं हो सकता। तप से ही पाप की ग्रन्थियों का छेदन होता है। **'तपसा चीयते ब्रह्म'** तप से ही ब्रह्म दर्शन होता है। वेदशास्त्र में ब्रह्मचर्य को सबसे बडा तप माना गया है। तप एवं ब्रह्मचर्य से ही मृत्यु के पार जा सकते हैं।

भक्ति मार्ग भी तप का ही मार्ग है। **भज् सेवायाम्'** धातु से सेवा के अर्थ में भक्ति शब्द की निष्पत्ति होती है। भक्ति का दूसरा नाम ही श्रद्धा है। बिना श्रद्धा के योगमार्ग में आगे बढ़ना कठिन है। यदि थोड़ा बहुत आगे चल भी पड़े तो तप और श्रद्धा के अभाव में शीघ्र ही पतन हो जाया करता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत गुरु पदपंकज सेवा' का सूत्र दिया गया है। गुरुगीता में 'गुरु सेवा परम तीर्थम्' कहकर इसकी महत्ता को व्यक्त किया गया है। गुरु सेवा का रहस्य योगियों के लिये भी अगम्य कहा गया है। गुरुसेवा में शिष्य को अपने अस्तित्व को मिटाना होता है। 'दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है' की कहावत शिष्य के लिये ही कही गयी है। पृथ्वी पर पड़ा हुआ दाना अपने अस्तित्व को नष्ट करके फिर अनेक दानों को उत्पन्न कर देता है। गुरु के पास हर समय रहकर सेवा करना तलवार की धार पर चलने के समान कहा गया है। कहा भी गया है –

गुरु कुम्हार, शिष्य कुम्भ है गढ़ गढ़ काढे खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर बाहर चोट।

गुरु को कुम्हार–कुम्भकार की संज्ञा दी गई है। कुम्हार की भाँति शिष्य की बुराईयों को निकालने के लिये ताड़ना देते रहते हैं। इस प्रकार से अन्दर से परमहित की भावना रहती है किन्तु बाहर से थपेड़े पड़ते रहते हैं। नित्य स्मरणीय गुरुदेव भगवान् प्रायः कहा करते थे जो गुरुदेव के थपेड़े नहीं खाता है वह अधूरा ही रहता है उसके अन्दर कमियाँ रह जाती है। गुरुदेव उन कमियों को दूर करते रहते हैं। गुरु के समीप हर पल डाँट पड़ती है जो उन्हें सहन कर ले वही धीर एवं वीर पुरुष बन जाता है। इसलिये शिष्य को चाहिए कि गुरु की हर फटकार को बिना किसी विचार व तर्क के सुन ले और सहन कर ले। अपने मन को क्षुब्ध न होने दे। मन का सन्तुलन हमेशा बनाये रखे इसी से उसका आत्मिक विकास होता रहता है। गुरुदेव की सेवा से ही गुरु शिष्य के मध्य प्रेम का अटूट रिश्ता बन जाता है। ऐसे में गुरु के आह्लाद से ही शिष्य में शक्तिपात अथवा शक्तिसंचार होता रहता है। शक्तिपात गुरुदेव के आधीन की वस्तु है। गुरु की कृपा से संकल्प से, सभी योग साधना की दुर्लभ क्रियायें स्वतः होती रहती हैं। शारीरिक और मानसिक तप से विशुद्ध व

निर्मल अन्तःकरण वाले शिष्य पर वाचिक, मानसिक हार्द शक्तिपात प्रतिक्षण होता रहता है। सेवा में प्रधानता भाव की रहती है यदि किसी को गुरु सेवा का अवसर न भी मिले किन्तु मन में लगातार सेवा करने का भाव बना रहे तो भी यह उसके कल्याण का कारण बनता है। सेवक को सेवा का अहंकार भी नहीं होना चाहिये।

इस सम्बन्ध में अंग्रेजी में एक कवि के उद्‌गार हैं– They also serve God who only stand and wait, अर्थात् वे लोग जो ईश्वर की आज्ञा का इन्तजार करते हैं वे भी प्रकारान्तर से सेवा ही करते हैं। जो समाधि का अभ्यास नहीं कर पाते उनके लिये भगवद् सेवा की आज्ञा भगवान् ने दी है। श्री मद्‌भगवद्‌गीता के बारहवें अध्याय में भगवान् ने अर्जुन से कहा–अर्जुन ! यदि तुम मुझ में ही वास करना चाहते हो तो तुम अपने मन को और बुद्धि को मुझ में समाहित कर दो। यदि तुम ऐसा नहीं कर पाते हो तो 'मत्कर्मपरमोभव' अर्थात् मेरे लिये कर्म करने वाले बन जाओ। इस प्रकार से ईश्वर के–गुरु के निमित्त कर्म करने वाले को भी सिद्धि अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। यही गुरु–सेवा एवं भगवद् सेवा मनुष्य के कल्यापण का कारण बनती है इसे ही भक्तियोग कहा गया है। ईश्वर भक्ति व गुरुभक्ति सद्यःमुक्ति प्रदायिनी है।

❃❃❃

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः।।

(विदुरनीति)

दूसरों में फूट डालने का जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखने के अयोग्य–निन्दित माने गये हैं।

पास तुम्हारे आता हूँ

कृष्णकान्त

पूर्ण गुरु का जन्म दिवस है,
सर्व समर्थ बनकर आये।
विजयदसी का विजय पर्व है,
चहुँ दिश मंगल है छाये।
पण्डित देवीराम जी के सुपुत्र बन,
योग निधि बन कर आये।
पातंजली के सूत्र बने तुम,
या वशिष्ठ के अवतार तुम्हीं।
गौरख, मछेन्द्र मृथी हो क्या ?
दत्तात्रिय अवतार तुम्हीं।
साधारण मानव की भांति,
जग में रहा व्यवहार सदा।
करुणा सागर जगतपति तुम,
जन-जन से सच्चा प्यार सदा।
सिद्धगुफा के सिद्धयोग के,
सूर्य बनकर छाये हो।
प्रभु रामलाल के शिष्य योग्यतम,
योग प्रकाश फैलाये हो।
कृष्णकान्त है शरण तुम्हारी,
गीता तुम्हारे गाता हूँ।
बामनी आश्रम के माध्यम से,
पास तुम्हारे आता हूँ।

***

महायोगेश्वर का प्रार्दुभाव दिवस

लेखक–**अवनीश कुमार भटनागर,** (सहारनपुर)

अति विलक्षण महायोगिराज महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जो कि पूर्व जन्मों के ही सिद्ध पुरुष थे गण्डकी नदी नैपाल में जहाँ उनका पूर्व जन्म का आश्रम विद्यमान था, वहाँ पर वह एक दीर्घ आयु वाले योगिराज थे। आदि सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी की दिव्य प्रेरणा हुई कि आपसे जगत में योग का कार्य कराना है इसलिये आप नवीन शरीर धारण करें। महाप्रभु श्री रामलाल जी के दिव्य आदेशानुसार महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने अपने पूर्व जन्म में अति वृद्ध शरीर को त्याग दिया। शरीर त्यागने के पश्चात् महायोगिराज का ब्रह्मतेजमयि सूक्ष्म शरीर वायुमण्डल में विचरने लगा, यह जानने के लिये कि हमारे ब्रह्मतेज से परिपूर्ण नवीन शरीर के माता–पिता कौन होंगे क्योंकि इतनी बड़ी महाशक्ति के माता–पिता भी कोई तपस्वी युक्त आहार विहार एवं श्रेष्ठ कुल व वर्ण वाले सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ स्त्री पुरुष ही हो सकते हैं इसलिये महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के उस ब्रह्मतेज ने समस्त वायुमण्डल में भ्रमण किया, परन्तु उन्हें अपने योग्य कोई माता–पिता नहीं मिले। जब वह श्री अलुपुर धाम के ऊपर से आकाश गमन कर रहे थे तो उन्हें पं० देवीराम जी एवं माता चरती देवी योग्य दम्पती दिखाई दिये जिन्हें माता–पिता के रूप में श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु ने चुन लिया। पुण्यमयि माता चरतीदेवी जी के उदर में स्थान ग्रहण करने के पश्चात् अपने पूज्यवर पिता श्री पं० देवीराम जी को स्वप्न में आदेश दिया कि श्री माता चरती देवी के उदर में हमने स्थान ग्रहण किया है। इसलिये माता जी को हर समय प्रसन्न रखे उन्हें कदापि क्रोध न आने दें उन्हें उचित आहार दें, मिर्च, खटाई, बासी अन्न का सर्वथा परहेज रखें, उत्तम पाक एवं रसायन खाने को दें ताकि गर्भ में ही हमारा शरीर बलिष्ठ एवं तेजयुक्त निर्मित हो, जिससे जीवन रोग शोक से सर्वथा बचा रहे। बड़े से बड़े अवतारी महापुरुषों का भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि उन्होंने जन्म से पूर्व अपने माता–पिता को कोई आदेश दिया हो परन्तु अति विलक्षण महायोगिराज श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी ने जन्म लेने से पूर्व ही अपने पिताजी को माता जी के आहार विहार के सम्बन्ध में निर्देश दिया था।

अश्विन सुदी श्री विजयादशमी, १६ अक्टूबर सन् १९०७ दिन बुधवार को महायोगिराज के ब्रह्मतेज का मानव आकृति के रूप में श्री अलुपुर धाम पानीपत हरियाणा में प्रादुर्भाव हुआ। पूज्यवर पिता श्री देवीराम जी एवं माता चरती देवी जी के कुल में उजाला हो गया

इसी कारण से परम तेजस्वी बालक का नाम रखा गया "चन्द्रदेव"। बालक चन्द्रदेव बचपन से ही विलक्षण बुद्धि वाले थे। वह बार–बार अपनी माताजी से कहा करते थे कि माता जी मेरे साथ बहुत सुथरा छोरा रहता है। उसके सिर पर बहुत सुन्दर टोप है। मुझे भी ऐसा ही चमकीला टोप पहनाओ। माता जी इस बात को नहीं समझ पाती थीं क्योंकि वह दृश्य किसी अन्य को दिखाई नहीं देता था। अर्थात बालक चन्द्रदेव के साथ भगवान श्रीकृष्ण का बाल रूप क्रीड़ायें करता था। बालक चन्द्रदेव थोड़े बड़े हुए तो भगवान श्रीकृष्ण उन्हें घर में रखे माखन का पता बताते और बालक चन्द्रदेव को चोरी के लिये उकसाते थे। इस कारण से अनेक बार घर पर मिट्टी के पात्र में रखे माखन को लेने के लिये मिट्टी के पात्र फूट गये और माताजी की नाराजगी के डर से बालक चन्द्रदेव ने अन्य बालकों के नाम बता दिये। कुछ और बड़े होने पर बालक चन्द्रदेव पिता के साथ यज्ञ करने जाते और योग साधनों का अभ्यास करने लगे। बिना पढ़े लिखे ही उन्हें सब वर्णाक्षरी का ज्ञान था। विद्यालय में प्रवेश हो जाने पर नाम रखा गया "पं० चन्द्रदत्त"। इनके एक और भाई थे पं० नरदेवजी जो छोटी आयु में ही दिवंगत हो गये थे। आपने अनेक स्थानों पर विद्या अध्ययन किया। जब आप अमृतसर में विद्या अध्ययन कर रहे थे तो उस समय आपकी आयु १२, १३ वर्ष की थी, दैवी प्रेरणा से एक शिवालय में जाकर तीव्र अनुष्ठान किया। उसके कुछ दिन बाद इनको यौगिक जगत की आधारभूत महाशक्ति योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के दर्शन हुये जो किसी कुंए पर बैठे जल पिला रहे थे। उन्होंने पं० चन्द्रदत्त जी को भी जल पिलाया और अपने हाथ का जल से भरा पात्र इन्हीं को सौंप कर कहा कि अब तुम प्यासों को जल पिलाओ, इनके जल पिलाते ही वहाँ पर लोगों की असख्य भीड़ आ गई। इन्होंने सबको जल पिलाया अर्थात् योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अपनी समस्त यौगिक विरासत पं० चन्द्रदत्त जी को सौंप दी और यह आज्ञा दी कि अब तुम आध्यात्मिक पिपासुओं को ज्ञान एवं शक्ति रूपी जल पिला कर आध्यात्मिक ऊँचाईयाँ प्रदान करो। अब तक बाह्य रूप से पं० चन्द्रदत्त जी योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के विषय में नहीं जानते थे।

महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अनेक बार स्वप्न के माध्यम से अपने पास आने का संकेत किया। एक दिन एक दुकानदार से श्री महाप्रभु रामलाल जी के विषय में वर्णन सुनने के पश्चात् स्वामी श्री मुलखराज जी से श्री रामलाल महाप्रभु जी का ऋषिकेश योग साधन आश्रम का पता ज्ञात करके आप ऋषिकेश आश्रम आ गये और समस्त यौगिक सत्ता के स्वामी महाप्रभु श्री रामलाल जी के दर्शन प्राप्त करके दीक्षा प्राप्त की और श्री महाप्रभु जी ने ऐसा दिव्य मन्त्र इनको प्रदान किया जो भूले से भी यदि किसी के कान में पड़ जाये

तो तत्काल ही समाधि लग जाये और जो श्री महाप्रभु जी ने अपने अनेकों शिष्यों में से किसी को भी नहीं प्रदान किया था। दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् आप अपने प्यारे श्री कृष्णचन्द्र जी के धाम श्री वृन्दावन धाम आ गये। यहीं पर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने इनको अनन्त शक्ति प्रदान करके बड़ी–बड़ी कृपायें की। छः ब्रह्मवाक्यों तत्वमसि अहम ब्रह्मास्मि आदि का साक्षात्कार कराया, एक समय में अनेक रूप धारण करने की योग्यता बख्शी और संसार को योग दीक्षा प्रदान करने का महान अधिकार भी छोटी उम्र में ही श्रीमहाप्रभु जी ने वृन्दावन में ही इनको प्रदान किया और साथ ही कहा भी कि चि० तुम सन्यासियों को ही नहीं सन्यासियों के बाप को भी दीक्षा प्रदान कर सकते हो। तुम्हारा कोई पुण्य नष्ट नहीं होगा। तुम एक बूंद शक्ति दोगे तुम्हारी तत्काली सौ बूंद शक्ति बढ़ जायेगी। वृन्दावन में ही आपको श्री रामलाल महाप्रभु जी ने श्री कृष्णोऽहं यह आत्मानुभूति कराई और साक्षात् श्री कृष्ण का रूप बना दिया और नाम रखा "चन्द्रमोहन"। अब योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी योग की परिपूर्ण अवस्था को पहुँच चुके थे। इन्होंने सद्गुरु रूप में प्रकट होकर योग का प्रकाश जगत को देने का बीड़ा उठाया। रातदिन एक करके भूख प्यास की परवाह न करते हुये मान अपमान में सम रहते हुये योग की शक्ति का संचार जगत में किया।

जो साधन महाप्रभु श्री रामलाल जी ने कृपा करके जगत को दिये वह सभी और जो दुर्लभ यौगिक साधन हिमालय में गुप्त थे वह सभी दिव्य साधन आपने अपने प्रयास से साधारण जनों को भी सुलभ करा दिये। चाहे वह जीवन तत्व, फल तत्व, यौवन तत्व साधन हो, प्राणायाम, ध्यान, समाधि, शक्तिपात, कुण्डलिनी जागरण, षटचक्र भेदन, वायुपान, आकाश गमन खेचरी, भूचरी, बज्रोली, सहजोली, अम्रोली आदि–आदि अनेकों साधन प्रदान किये। महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने अनेकों ध्यानयोगी एवं सिद्ध पुरुषों का निर्माण किया जैसे ध्यान योगियों में श्री महेन्द्र नारायण, महात्मा अमीरानन्द, ईश्वरी प्रसाद खड्डर, आचार्य चन्द्रहास, योगिनी सरोज देवी आदि संक्षेप में ही और सिद्ध पुरुषों में योगी श्याम बिहारी शुक्ल, संसार सिंह प्राणायाम सिद्ध श्री रघुनन्दन प्रसाद टाट बाबा आदि। योग एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने क्रान्ति लाकर रख दी। इनके सम्पर्क में लाखों लोग आये और इन्होंने सभी को कुछ न कुछ योग शक्ति का दान अवश्य दिया उनमें से असंख्य लोग चमक उठे और कुछ चमक कर भी कभी यह नहीं कह सके कि हमको दिव्य शक्ति सम्पन्न बनाने वाले महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी हैं।

आपको अनेकों विश्वयोग सम्मेलनों में अध्यक्ष का पद देकर सम्मानित किया गया। अनेक योग सम्मेलनों में आपने दिव्य शक्तिपात का नजारा प्रस्तुत किया। विश्वभर से आये अनेकों सांइटिस्टों और डाक्टरों ने इसका परीक्षण किया उन्होंने भी महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन

जी की योग में परिपूर्णता को माना और इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। जिससे विश्वभर के यौगिक जगत में योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का नाम गूँज उठा। सन् १६८६ में यौगिक क्षेत्र में महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की योग्यता को देखकर "योग शिरोमणि" की उपाधि भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह के द्वारा प्रदान की गई। भारत के अनेक सम्मानित एवं योग्य महापुरुष भी, महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जैसे पूज्यपाद योगिराज देवरहा बाबा जी उन्हें साक्षात श्री कृष्ण मानते थे और सार्वजनिक रूप से कहते थे कि ये योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी श्री वृन्दावन बिहारी मेरी आत्मा हैं। देवरहा बाबा जी ने महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के शीश पर पगड़ी एवं मोर मुकुट बांध कर पीताम्बर पहिनाकर बड़ा सम्मान किया था। प्रयाग वाले श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, गोरक्ष योग पीठ गोरखपुर वाले महंत अवैद्य नाथ जी, शंकराचार्य जी श्री रामानन्दाचार्य, रामभद्राचार्य जी आदि अनेक जाने माने सन्त महापुरुष उनकी योग्यता को देखकर बहुत सम्मान देते थे।

महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने अपने सद्गुरुदेव योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी की लीला स्थली श्री सिद्धगुफा संवाई धाम को ही अपनी कर्मस्थली बनाया, निर्जन स्थान में बनी गुफा का जीर्णोद्धार करके ३०, ३५ बीघा जमीन गुफा के आस–पास खरीदकर एक घास फूस की पर्णकुटी बनाकर उसमें निवास करने लगे और जगत में योग की ध्वजा लहरा दी। धीरे–धीरे आश्रम में भवनों का निर्माण कराया जिससे आगन्तुकों के ठहरने की व्यवस्था हो सके। श्री राम नवमी योग महा मेले में श्री महाप्रभु जी के जन्मोत्सव पर देश के कोने–कोने से लोग आते थे और गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी से इच्छित वर प्राप्त करते थे। जिनको पुत्र चाहिये था, वह पुत्र प्राप्त करते थे। जिनको सन्तान नहीं थी वह सन्तान का वर प्राप्त करते थे। जिन्हें धन, यश, सम्मान चाहिये था, वह इन सब की याचना करते थे। जिनके स्वास्थ्य खराब थे वह स्वास्थ्य लाभ करते थे। कहाँ तक कहें वह कल्पवृक्ष की भाँति सबको यथायोग्य प्रदान करते थे। इससे उनकी ख्याति गाँव–गाँव, शहर–शहर चहुँओर फैल गई और लाखों लोग उनकी शरणागत हुये। इनकी योग में गहरी पहुँच को देखकर अनेक बार विदेशों से निमन्त्रण आये। विदेशियों ने यहाँ तक प्रयास किये कि हे गुरुदेव जहाज को गंगाजल से धुलवा दें तब तो आप विदेश चलेंगे, परन्तु श्री महाप्रभु चन्द्रमोहन जी ने मना कर दिया और कहा कि लल्ला अभी तो अपने देश में ही बहुत काम बाकी है विदेश तो हम तब जायें जब अपने देश का कार्य सम्पूर्ण हो गया हो। योग भारत की विद्या है।

योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का जीवन परम तपोमय रहा। उन्होंने चण्डी पर्वत एवं वनों में रहकर घोरतम तप करके तीव्र योगानुष्ठान किये। इन्होंने असंख्य ऐसे असम्भव

कार्य भी संभव कर दिखाये जो चमत्कार बनकर मिसाल के लिये जन मानस के सामने विद्यमान हैं। जैसे परम दुर्लभ शक्तिपात को जन साधारण को भी देना, अनेक रूप धारण करके भक्तों की रक्षा, जहाँ चाहे वहीं प्रकट हो जाना, आवश्यकता हुई तो चलती ट्रेनों को रोक देना और बिना ड्राइवर के पुनः चला देना, आकाश गमन, मृतक जीवों में शक्तिसंचार करके पुनः प्राण दान देना, असाध्य बीमारियों का इलाज भी चुटकी बजाते ही कर देना। अन्तःकरण की पुकार को तुरंत सुन लेना और भक्तों की तत्काल रक्षा करना, आध्यात्मिक उन्नति चाहने वाले भक्तों को शक्तिपात देकर आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ प्रदान करके दुर्लभ ब्रह्म साक्षात्कार कराना, जीवों को योग रूपी धर्म के सत्य मार्ग पर चलाया पर अपना कोई पथ मजहब नहीं चलाया।

ये परम दुर्लभ कार्य जो वह जलकल्याण के लिये बराबर करते रहे और उनकी चिन्मय सत्ता से जुड़े लोगों के लिये तो अब भी जनकल्याण कर रहे हैं और सदैव करते रहेंगे। यह सिद्ध महापुरुषों के लिये नित्य प्रति का खेल है क्योंकि वह "कुर्त्तुन अकुर्त्तुम अन्यथा कुर्त्तुम वाली स्थिति में सदैव रहा करते थे।

नोट–गत वर्ष अक्टूबर माह में सिद्धयोग पत्रिका में श्री सद्‌गुरुदेव जी के अवतार के वर्ष के विषय में सन् १९०७ एवं १९०६ दोनों छपे थे। हमने इसकी खोज की तो सन् १९०७ को ज्यादा प्रमाणित पाया। यदि किसी भाई के पास इससे अधिक प्रमाणिक जानकारी है तो कृपया वह सिद्धयोग के माध्यम से पाठकों को अवश्य अवगत कराने की कृपा करें।

❋❋❋

शोक-संवेदना

श्री प्रेम नारायण वाजपेयी बिगाही (अकबरपुर) कानपुर के पिताश्री का सितम्बर माह के अन्तिम तारीखों में देहावसान हो गया। उनके अन्य जगत नारायण आदि पुत्र तथा पुत्रियाँ हैं। श्री प्रभुजी उन्हें इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें। सिद्धयोग परिवार परिवारीजनों की इस दुःखद अवसर पर हार्दिक संवदेना प्रेषित करता है।

सम्पादक-सिद्धयोग

सद्गुरु सम्पूर्ण ग्रन्थों में

प्रेषक–वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर

योग योगेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड नायक, श्री कृष्ण चन्द्र ने ज्ञान गीता में जो अमृतोपदेश अर्जुन को दिया है, वह आज के युग में प्रासंगिक एवं हृदयग्राही है।

सुख दुःखे सम कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।

२–३८

अर्थात् जय पराजय, लाभ–हानि और सुख–दुःख को समान समझकर उसके बाद युद्ध के लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

४–३८

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने–आप ही आत्मा में पा लेता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

४–३६

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलंब के तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने मुख्य रूप से तीन बातें बतलाई। पहली बात मनुष्य जितेन्द्रिय और साधना परायण हो, और दूसरी बात साधक के मानस पटल पर श्रद्धा का भाव उमड़ रहा हो, तीसरी बात साधना करने में तत्परता हो।

जीवन के प्रत्येक बिन्दु पर अध्यात्मिक जगत का भास्कर (सद्गुरु देव भगवान) अपने प्रिय शिष्यों को वरदहस्त किरण के द्वारा अज्ञानता एवं मोह का नाशक करके ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर दिया करते हैं। जन्म जन्मान्तरों से अज्ञान अन्धकार से आवृत आत्मा पर पडे हुए आवरण को हटाने के लिए सद्गुरु के प्रवचन व उपदेश होते हैं। जो "जीव" के दायरे से निकलकर "शिव" के समीप 'शिवतत्व' पद की प्राप्ति कर, मोक्ष प्रदाता बना देते हैं।

अनुशासित व्यक्ति ही योगी हो सकता है। बिना अनुशासन के होते योग का निर्माण ही नहीं, किसी भी राष्ट्र की उन्नति वहाँ के रहने वाले अनुशासित, व्यक्ति के चरित्र पर निर्भर रहा करती है। आज भारत जैसे धार्मिक देश में अनुशासन का अभाव है इसी कारण से हम अपनी गरिमा, एवं भारतीय संस्कृति से दूर होते चले जा रहे हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि वेद, शास्त्र महात्मा, गुरु और परमेश्वर के वचनों में प्रत्यक्ष विश्वास करके, कर्मयोग गीता के संकल्प के द्वारा साधना में जुटकर योगनिष्ठ साधक बनकर सद्गुरुदेव द्वारा बताये हुए मार्गों पर चलकर एक समुन्नत विचारधारा भारतीय संस्कृति का निर्माण कर देश की गरिमा को बनाये रखें।

योग का पवित्र पावन सन्देश हमारे और आपके ही नहीं अपितु सारे विश्व के कल्याणार्थ, योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने मुखारविन्द से जो बाते बतलाई वह कितनी ही हृदयग्राही एवं हृदयस्पर्शी है। आइये हम सभी प्रभु जी द्वारा श्री गुरुदेव वचनामृत का पान करें।

तुम सब मेरी वाणी पर विश्वास करके बुद्धि से समझकर चित्त लगाकर योग ध्यान जप करते रहो। अगर ऐसा करोगे तो समस्त दुःखों क्लेशों से रहित होकर सुखद मांगलिक विभूतियों को प्राप्त होकर मोक्ष गति को पा जाओगे।

तुम अपनी वृत्तियों को अर्न्तमुखी रखो मन को एकाग्र करके शक्ति संचय करो. अपनी शक्ति को बाहर राग द्वेष आदि में तथा निरर्थक बातों में बरबाद मत करो अपने ध्यान जप के अभ्यास को बढ़ाते हुए आत्म शक्ति को बढ़ाओ।

चाहे कोई गृहस्थी हो या विरक्त हो, स्त्री हो या पुरुष हिन्दू हो या मुसलमान, सभी का समान अधिकार है इस योग मार्ग में चलकर उन्नति करने का। यदि किसी के भाग्य में यह योग विद्या है, तो वह तीव्रतम अभ्यास करें।

तुम्हारे सबके बड़े भाग्य है कि तुम्हें इस घोर कलिकाल में आनन्दकन्द महाप्रभुजी श्री रामलाल जी के चरण कमलों का आश्रय मिल गया और साथ ही सर्व समर्थ गुरुदेव मिल गये अच्छे सम्पन्न घरों में जन्म मिल गया इतने पर भी तुम आत्मकल्याण न कर सको तो आत्म हत्यारे हो। समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का आरम्भ और समापन गुरु से ही होता है। विश्व भर के सभी धर्म सम्प्रदाओं में गुरु का सर्वोच्च स्थान स्वीकार किया है और ईश्वर के रूप में गुरु को ही पूजा गया है।

गुरु पद परम पद है इस परम पद को पाकर साधक (शिष्य) मोक्षपद को पा जाता है। सद्शिष्य ही परिपक्व होकर गुरुतत्व को उपलब्ध करके सद्गुरु हो जाते हैं।

दीपक सम गुरु वचन को, चले जो लेकर हाथ।
जगत अंधेरी राह में, भटके कभी न पाथ।।

गुरु भक्त सहजोबाई ने गुरु आज्ञा का फल बताते हुए कहा है–

दो०- गुरु आज्ञा दृढ़ करि गहे, गुरु मत सहजो चाल।
रोम-रोम गुरु को रहे, सो शिष्य होय निहाल।।
दो०- शिष्य शिष्य सब कहते हैं, शिष्य भया न कोय।
सद्गुरु सीख को जो लहे, शिष्य कहावे सोय।।

जो गुरु की सिखावन, आज्ञा उपदेश आदि के अनुसार चलता है। वही सही अर्थों में शिष्य है।

कबीर निगुरा ना मिले, पापी मिले हजार।
एक निगुरे के शीष पर, लाख पापों का भार।।

सद्गुरु देव जी से दीक्षा लेकर फिर हम अन्य किसी के न होकर गुरुदेव भगवान के हो जाते हैं और हमारा अन्य कोई न होकर गुरुदेव भगवान् हमारे हो जाते हैं हमारे सब कर्म तब भगवान से सम्बन्धित हो जाते हैं।

सद्गुरु मोक्ष का द्वार है। परमात्मा की ओर से मानव को मनुष्य शरीर केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिए मिला है। साधन रूप में साधना करने के लिए ही दिया गया है कवि कुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसी दास ने रामायण में कहा है–

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाहिन जेहि परलोक सुधारा।।

चौरासी लाख योनियों में युक्ति की साधना के लिए और किसी योनि में कोई द्वारा है ही नहीं। योगियों के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र मनुष्य के सिर में एक मोक्ष का द्वार है लेकिन वह द्वार बन्द पड़ा हुआ है। उस ज्ञान (चक्षु) के अधिष्ठाता स्वयं सद्गुरु देव भगवान ही है।

ध्यान मूलं गुरो मूर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम्।
मंत्र मूलं गुरो वाक्यं मोक्ष मूलं गुरु कृपा।।

सद्गुरु का ध्यान मुख्य ध्यान है, गुरु की ही पूजा मुख्य पूजा है। और गुरु के मुखार बिन्द से निकली हुई वाणी ही मुख्य मन्त्र है, और गुरु की ही कृपा मोक्ष का कारण है।

नियमानुवर्तिता से ध्यान योग का अभ्यास करने वाले साधक के लिए उसके द्वारा किया जा रहा अभ्यास ही उसका गुरु बन जाता है। और वह अन्दर ही अन्दर उसका मार्ग दर्शन करता रहता है साधक को विनयी बनकर योगमार्ग की साधना करनी चाहिए सद्गुरु ही योग मार्ग में एक मात्र सहायक होते हैं। गुरु तत्व देवताओं की शक्तियों से भी अत्युच्च एवं उत्कृष्ट है, देवता लोग अपनी–अपनी किन्हीं विशिष्ट शक्ति मात्र से संयुक्त है, अतएव सीमाबद्ध है। परन्तु सद्गुरुदेव अनन्त शक्ति से विभूषित असीम सर्वव्यापी और सर्वेश्वर हैं तथा साधक की भलाई के लिए सतत् एवं सर्वत्र उपस्थित रहा करते हैं। ❊❊❊

प्रभु चरणों में समर्पित

–राजेश कुमार श्रीवास्तव (बलिया)

हे योग के शुभ रचयिता, प्रभु रामलाल प्रभवे नमः,
हे आदि गुरु मोहन पिता, चन्द्र श्री गुरुवे नमः

संत् सृष्टि के कारण प्रभो, महादेव मंत्रेश हो,
आनंद अमिताभ शेष हो, सिद्ध गणेश महेश हो,
हे गिरिनाथ, त्रैलोक्य नाथ, वज्रहस्ताय वे नमः,
हे आदि गुरु......

चन्द्र, भुजंग, ज्ञान गंग, संग शिव नाथ है,
जटा मुकुट, सुधा मयूख, गरल त्रिशूल हाथ है,
हे विश्व साध्यम्, विश्व बीजं, हे विश्वनाथ नमो नमः,
हे आदि गुरु......

तुम योग रूप, ब्रह्मरूप, अनंत, अभेद, अनीह हो,
मत्स्येन्द्र, पतंजलि, व्यास तुम, कपिल और वशिष्ट हो,
हे सर्वदेव, सर्वतीर्थ, नारायण पशुपते नमः,
हे आदि गुरु......

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ओम् स्वरूप हो,
शुभ्र कलेवर, वज्रधर श्री गंडाराम जी के सूत हो,
हे भागवन्ती योग प्रवर्तक, राजेश प्राण अधाराये नमः,
हे आदि गुरु.....

संस्कार शक्ति व साधना शक्ति (भाग-१३)

—कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

संस्कार शक्ति व साधना शक्ति के अन्तर्गत पूर्वकृतकर्म के संस्कारों का साधना के संस्कारों द्वारा क्षय होना बताया गया था और साधना के इन संस्कारों की दृढ़ भूमि आत्मसमर्पण (ईश्वर प्रणिधान) तथा तीव्रतम दृढ़ अभ्यास के साथ लगातर अनुष्ठान से पल्लवित होती है, इस परिप्रेक्ष्य में सटीक उदाहरण भी दियें गये थे। परन्तु कोई भी अनुष्ठान तब सफल होता है जब वह शुद्ध चित्त व शुद्ध अन्तःकरण के साथ किया गया हो। शुद्ध अन्तःकरण के बिना आत्मसमर्पण की कल्पना भी सम्भव नहीं। सभी कुसंस्कारों का शोधन करने के लिये ही तप की आवश्यकता होती है। तप से चित्त की धुलाई होती है। परन्तु एक प्रबल स्तम्भ हमारे चित्त में इस प्रकार गड़ा रहता है कि उसके रहते हुए हमारे सभी संयम–नियम ध्वस्त हो जाते हैं और वह स्तम्भ है राग–द्वेष। हमारे सभी कुसंस्कारों की जड़ें इसी वृत्ति में विस्तार पाती हैं। अतः अब विस्तार से प्रसंग आगे बढ़ता है राग–द्वेष के संस्कारों का–

राग-द्वेष के संस्कार

यही है वह विध्यवंसकारी स्तम्भ, जिसने हमारे सभी संस्कारों में अमूलचूल परिवर्तन किये हैं। राग–द्वेष का यह ज्वर संसार में हर किसी प्राणी को चढ़ा रहता है, इस ज्वर से लाखों, हजारों में ही नहीं अपितु करोड़ों में कोई एक विरला बच पाता है। हम जैसे साधारण प्राणी (जो सही मात्रा में अभी साधकों की श्रणी में भी आने लायक नहीं हुए) का तो जिक्र ही क्या करें क्योंकि साधना काल में इन्हीं दो वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिये संयम–निमय में ढलने का अभ्यास किया जाता है, सफलता या असफलता प्रभु के हाथ में है, परन्तु इस द्वेष व राग का तापमान बड़े–बड़े धर्मअनुयायियों, प्रवचनकारों, आश्रम संचालकों, मठाधीशों, मार्गदर्शकों, शास्त्रविज्ञों, विद्वानों, विदूषियों, संन्यासियों, साधुओं, वैरागियों, योगियों, तपस्वियों कुछ शिष्या के मनमुख गुरुओं आदि में आजकल बहुत मात्रा में देखने–सुनने व परखने में आ रहा है। यह विडम्बना या आश्चर्य या विध्वंसकारी व भटकाव कृत्य न जाने हमारे समाज व देश को क्या दिशा व संस्कार देगा, समझ नहीं आता। हम जिनसे मार्गदर्शन पाने की चाहत रखते हैं और आशा करते हैं कि शायद इनके शब्द व आशीर्वाद हमें सँभाल लेंगे तो हमारे भावों पर भारी कुठाराघात लगता है। जब हम उन्हीं को प्रपंचों में व राग–द्वेष के ज्वर से पीड़ित देखते हैं। हम यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि आँखों की रोशनी देने वाला सूर्य ही जब बादलों से घिरा रहेगा तो बेचारी आँखें अंधकार में भटककर कम प्रकाश में क्यूँ न थकेंगी व क्यूँ न मुँदेंगी। जब बाड़ ही खेत को

निगलेगी तो क्या खेत की रक्षा हो पायेगी ? जब पहरेदार ही घर की दीवार तोड़कर धन हड़प करेंगे तो क्या घर सुरक्षित रह पायेगा ? जब मार्गदर्शन करने वाला ही मार्ग भूल जाये तो क्या वह पथिकों को सही दिशा दे पायेगा ?

सचमुच मशाल बनना बहुत मुश्किल है। जो अपने सर्वांग को जलाकर आग में तपता है, वही मशाल बन सकता है। अर्थात् जिसकी एक-एक कुप्रवृत्तियों का रस एक एक रोग से निकलकर बाहर हो गया है, सद्आचरण जिसका परिपक्व हो गया है, संयम-नियम में जिसने स्वयं को तपा लिया तथा दुनिया की लानत, फटकार, मान-अपमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख रूपी द्वन्द्व पर विजय प्राप्त कर ली, वही एकमात्र पथप्रदर्शक हो सकता है दूसरों के लिये। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, अहंकार इन सबकी जन्मदात्री राग-द्वेष नामक दो मुख वाली नागिन ही है। इस नागिन ने हमारे अन्तःकरण को इस प्रकार विषैला बना दिया है कि समस्त इन्द्रियाँ इतनी विषैली हो गयी हैं कि हम जब भी बात करते हैं तो निन्दा, चुगली, क्रोध, लोभ, अभिमान, काम, ईर्ष्या आदि विष ही हमारी जुबान से शब्दों का रूप ले लेकर दूसरे व्यक्तियों के कानों में जाकर उनके अन्तःकरणों में अपना संचार कर डालता है और इस प्रकार राग-द्वेष का यह विषैला ज्वर संक्रामक रोग की तरह सबको लग जाता है। यही है वह द्वन्द, जिसे बहुत तप करने के बाद करोड़ों में कोई विरला मनस्वी जीत पाता है। परम सत्ता में स्वयं को लय करना आसान नहीं है। गीता में भगवान ने स्पष्ट कह दिया-

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तत्।। १५/५।।

इस श्लोक की व्याख्या सन्त ज्ञानेश्वर जी के शब्दों में- "जिस प्रकार वर्षा ऋतु के अन्त में आकाश में बादल बिल्कुल नहीं रह जाते, उसी प्रकार जिन पुरुषों के मन में मान और मोह आदि विकार बिल्कुल नहीं रह जाते। आत्मप्राप्ति के कारण जिनकी समस्त क्रियायें धीरे-धीरे उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जिस प्रकार फल लगते ही केले के वृक्ष के जीवन का अन्त हो जाता है, जिन्हें सब प्रकार के संकल्प-विकल्प उसी प्रकार छोड़ देते हैं, जिस प्रकार कटे हुए वृक्ष को पक्षी लोग छोड़ देते हैं, जिनमें उस भेद-बुद्धि का नाम भी नहीं होता, जिस भेद-बुद्धि की भूमि पर दोषों की वनस्पति बहुत जोरों से उत्पन्न होती है, जिनकी देहअभिमान बुद्धि अविद्या के सहित उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार सूर्य का उदय होते ही रात्रि नष्ट हो जाती है। जो लोग अज्ञानमय द्वैत को उसी प्रकार छोड़ देते हैं, जिस प्रकार शरीर उस जीव को अकस्मात छोड़ देता है, जिसकी आयुष्य समाप्त हो जाती है। जिनके सामने देह को जान पड़ने वाले सुखों और दुखों का द्वन्द्व क्षण मात्र भी नहीं ठहरता। जिन पर हर्ष और शोक का उसी प्रकार कोई प्रभाव नहीं

पड़ता, जिस प्रकार जाग्रत होने पर मनुष्य पर स्वप्न में होने वाले, राज्य लाभ अथवा मरण के प्रसंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिन पर सुखों और दुखों के द्वन्द्व उसी प्रकार कोई प्रहार नहीं करते, जिस प्रकार गरुड़ पर सर्प कभी प्रहार नहीं कर सकता। जो अनात्म पदार्थ रूपी जल को अलग करके और आत्मानन्द रूपी दूध पीकर सुविचार के राजहंस बने रहते हैं। जो अज्ञान के कारण चारों ओर फैली हुई आत्म वस्तु को ज्ञान की दृष्टि से अखण्ड स्वरूप में उसी प्रकार एकत्र करते हैं, जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी–तल पर जल की वर्षा करके उसे फिर अपनी किरणों के द्वारा अपने ही बिम्ब में ले आता है। आत्म निर्णय में जिनका विवेक उसी प्रकार समरस हो जाता है, जिस प्रकार समुद्र में मिलकर गंगा का जल समरस हो जाता है। जिन्हें सब जगह केवल आत्म–स्वरूप ही दिखाई देता है और जिनके लिये आत्मस्वरूप से बाहर निकलना उसी प्रकार सम्भव नहीं है जिस प्रकार आकाश के लिये यहाँ से कहीं और जाना सम्भव नहीं है और इसीलिये जिनके साथ विषय–वासनाओं का कभी कोई सम्पर्क ही नहीं हो सकता। जिनके हृदय में विकारों का उसी प्रकार कभी उदय नहीं होता, जिस प्रकार ज्वालामुखी पर्वत पर बीजों में अंकुर नहीं उत्पन्न होते। जिनका चित्त काम आदि विकारों से उसी प्रकार रहित और निश्चल होता है, जिस प्रकार क्षीर सागर उस समय निश्चल हुआ था, जिस समय घर्र–घर्र घूमने वाला मन्दराचल उसमें से निकाल लिया गया था। जिनमें काम आदि का कोई दोष उसी प्रकार नहीं दिखायी देता, जिस प्रकार सौलहों कलाओं से युक्त होने पर चन्द्रमा के किसी अंग में कोई न्यूनता नहीं दिखाई देती। सारांश यह है कि जिनके सामने विषयों का उसी प्रकार ठिकाना नहीं लगता, जिस प्रकार वायु के सामने सूक्ष्म कण का ठिकाना नहीं लगता है और इस प्रकार जो लोग ज्ञान की अग्नि से अपने सारे दोषों और मलों को जलाकर पूर्ण रूप से निर्मल हो जाते हैं, वे खरे सोने में खरे सोने के ही समान पूरी तरह से वहाँ जाकर मिल जाते हैं।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वयं को कितना निचोड़ना पड़ता है साधना को परिपक्व करने के लिये व आत्मतत्व में लीन होने के लिये। जिन व्यक्तियों को स्वयं परिश्रम करके तप में आगे बढ़ना होता है, वे साधक अधिक सुधरी हुई अवस्था में पाये जाते हैं और जिन व्यक्तियों ने शक्तिपात की बहुत कम कदर की व संयम नियम जीवन में कम उतारा। बहुत कम लोग शक्तिपात पाकर आगे बढ़ पाते हैं, अन्यथा उनके संस्कार उनकी कुप्रवृत्तियों के कारण बिगड़ते ही चले जाते हैं। साधना क्षेत्र में कदम–कदम पर परीक्षा है अथवा कुछ समय के अन्तराल पर परीक्षायें ली जाती रहती हैं और कोई विरला पूर्णतया सफल हो पाता है, अधिकाँश साधक प्रलोभन में आ जाते हैं, किसी को संपत्ति का लालच, किसी को सिद्धि का लालच, किसी को यश का लालच, किसी का मोह (पुत्र, स्त्री, पति, बेटी, मकान, मठ आदि) इन्हीं सब झंझावतों में विवेक गिरता रहता है और साधना

में पतन होता रहता है। झूठ बोल–बोलकर अपना बचाव करना, स्वार्थ सिद्ध करना, सही बात छुपाना, कर्त्तव्य से पीछा छुड़ाना, लालच करना, केवल अपना भला चाहना, अकड़ दिखाना, प्रपंच रचना, वचन देकर भंग करना, यही सब उनके जीवन में उतरता है और जितनी साधना बढ़ चुकी होती है, उसमें न केवल व्यवधान ही आकर पतन करते हैं अपितु आगे बढ़ने के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं, जो किसी के मार्ग को अधिक गम्भीर, दयनीय व कठोर अवस्था में घेर देता है, ईश्वर उसका मार्ग भी अशान्ति और निन्दनीय, कँटीला व कठोर बना देता है। स्वयं किसी नियम, कानून आज्ञा व संयम को निभाने में लालच व आनाकानी करते हैं और दूसरा ऐसा कर बैठे तो तुरन्त दण्ड का विधान तैयार किया जाता है। ऐसा करने व करवाने पर मजबूर करने वाला व्यक्ति स्वयं दोष व पाप का बहुत बड़ा भागी होता है। ईश्वर हमें हर बात पर टोकने व रोकने नहीं आयेगा। उसने हर वर्ण व वर्ग के लिये व हर पद व अवस्था के लिये मयार्दायें व नियम निर्धारित किये हैं और मार्गदर्शक के रूप में ऋषियों, साधुओं, गुरुओं व आचार्यों की रचना तैयार की है। शास्त्रीय सिद्धान्त भी मनुष्य को मर्यादित करने के लिये हैं परन्तु मनुष्य इतना ढीठ है मानो वह यही दावा करता है, कि हम पशु हैं, अतः शास्त्र, आचार्य व गुरु हमारे किस काम के।

उसकी अनुकम्पा हर व्यक्ति पर है। स्वस्थ शरीर, प्रबल इन्द्रिय, बुद्धि, मन व प्राकृतिक उपभोग्य वस्तुएँ सब कुछ तो दिया, मनमुखी व्यवहार करता है तो समझो कि उसे पशुवत् जीवन पसन्द है। ऐसे में यदि परमात्मा बार–बार उसकी योनि बदले (कीट–पतंगे, पशु–पक्षी योनि) तो क्या आश्चर्य ? उसने उसके स्वभाव व मनोनुसार ही देह रूपान्तर व दण्ड का विधान किया। यदि मनुष्य असफल हुआ तो स्वयं के दोष व अशुभ आचरण द्वारा। यहाँ हर कोई परीक्षार्थी है क्योंकि यह भूलोक कर्मयोनि है। यहाँ शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य का लेखा–जोखा हर पल तैयार रहता है क्योंकि मानवीय दृष्टि सीमित है परन्तु ईश्वरीय शक्ति अद्‌भुत, अद्वितीय, असीम व जग के कण–कण में विद्यमान है। वह हमें नहीं दिखता परन्तु हमें हर पल देखता है। रिजल्ट हमारा वही बनायेगा। वह कुछ कहता नहीं, उसकी लाठी में दम है, शोर नहीं।

जिस समय विद्यार्थी कक्षा में होता है तो शिक्षक उसे पूरा वर्ष पढ़ाता है और जो विषय व प्रश्न विद्यार्थी की समझ में नहीं आते तो वह (शिक्षक) हल भी करता है। विद्यार्थी दस बार प्रश्न करता है और अध्यापक हर बार उसे समझाता है परन्तु जब वार्षिक या अर्द्धवार्षिक परीक्षा आती है तो अध्यापक मौन हो जाता है। वह सभी विद्यार्थियों की उचित व क्रमशः बैठने की समुचित व्यवस्था करता है। उन्हें परीक्षा–प्रश्न–पत्र व लिखने के लिये अभ्यास पुस्तिका भी देता है और जब परीक्षार्थी कॉपी में उत्तर लिखते हैं तो परीक्षक कक्षा में हर विद्यार्थी के आस–पास बार–बार चक्कर भी लगाता है तथा नोट करता रहता है कि वे क्या–क्या लिख रहे हैं, उनकी लिखने की गति, चेहरा व सोचने का ढंग सब कुछ

उसकी दृष्टि में रहता है। परन्तु वह उस समय कहता कुछ नहीं, न पीटता, न धमकाता, न कॉपी छीनता। जिस समय बच्चे परीक्षा देकर कक्षा से बाहर निकल जाते हैं; उस समय भी वह उन्हें कुछ नहीं कहता, बस मौन रहता है परन्तु जब वह कॉपी चैक करता है तो उसकी कलम नम्बर काटती रहती है। नम्बर काटते समय भी वह किसी को पास नहीं बुलाता न किसी के घर जाता, बस ! परीक्षाफल के दिन विद्यार्थी विद्यालय में आते हैं और परीक्षाफल चुपचाप विद्यार्थियों के हाथ में देता रहता है। उसकी वाणी में पूरा वर्ष शोर था परन्तु परिणाम घोषित करने से पहले व यथासमय उसकी वाणी का दम उसके पैन (कलम) में आ जाता है। जब न विद्यार्थी कुछ कर पाते न अभिभावक। विद्यार्थी का परिश्रम या आलस्य उन्हें अगली कक्षा के लिये निर्वाचित या उसी कक्षा के लिये पुनः पठन का निर्णय कर डालता है। अध्यापक एक व्यवस्थापक, संचालक व नियंत्रक होता है बाकी सब कुछ विद्यार्थी के परिश्रम पर निर्भर है। शिक्षक शिक्षा दे सकता है, बार–बार अभ्यास के लिये बाध्य कर सकता है परन्तु हर बात का एक समय निर्धारित होता है। शिक्षाकाल व अभ्यासकाल पूरा होने पर उसे परीक्षा भी लेनी पड़ती है व परिणाम भी उत्तीर्ण व अनुत्तीर्ण के रूप में देना पड़ता है जो कि उसका अपना कर्त्तव्य है।

ठीक इसी प्रकार ईश्वर ने जीव के रहने, खाने, सोने, पहनने व अन्य भोग्य वस्तुओं की समुचित व्यवस्था की है, निर्णय के लिये बुद्धि, विचार व संकल्प विकल्प के लिये मन व ज्ञान प्राप्त करने के लिये ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्म करने के लिये कर्मेन्द्रियाँ प्रदान की। उसने शिक्षक–परीक्षक की भाँति स्वयं को भी नियम में रखा व जीव को भी परन्तु ये जीव का दुर्भाग्य है कि लापरवाही की हद से परे हो गया है। परिणाम स्वरूप बार–बार हम इसी भूलोक पर (मृत्युलोक) पर भिन्न–भिन्न रूप में पटक दिये जाते हैं व तमाम उम्र दुख, क्लेश में काटते हैं। विषय–विलास के लिये दिन रात घोर परिश्रम कर डालेंगे परन्तु सतोगुण का उदय हो, इसके लिये कुछ भी अथक प्रयास न करेंगे। सतोगुण के बढ़ने पर राग–द्वेष समाप्त होता जाता है परन्तु रजोगुण व तमोगुण के बढ़ने पर राग–द्वेष बढ़ता जाता है। अतः रजोगुण पर लगाम लगानी ही पड़ेगी यदि संस्कारों की शुद्धि करके साधना की शक्ति को आगे बढ़ाना है तो। इतिहास साक्षी है बड़े–बड़े ऋषि, राजा, धुनर्धर व धर्मज्ञ इसी राग–द्वेष के कारण मात खा गये। इस कर्मभूमि में और ईश्वरीय दर्शन व ज्ञान व सहायता प्राप्त करने के बाद भी उन्हें कर्मों का भुगतान दुख रूप में भोगना पड़ा। राग–द्वेष के कारण मनुष्य ने जो भी कर्म किये उसका परिणाम उन्हें भुगतना ही पड़ा। विश्व का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ 'महाभारत' (जिसमें से गीता जैसे दिव्य ग्रन्थ का प्रादुर्भाव हुआ है) दुनिया के लिये सत्य व विशाल इतिहास प्राप्त कराता है कि कि प्रकार राग–द्वेष के घेरे में घिरकर कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, गान्धारी, धृतराष्ट्र, कर्ण, जयद्रथ, दुर्योधन, दुःशासन, भीष्मपितामह, द्रौपदी व पाँचों पांडव जीवन भर संघर्ष

करते रहे और दुष्परिणाम को भी भुगतना पड़ा। सम्पूर्ण महाभारत राग-द्वेष का खेल था। किसी को राज्य के प्रति राग व इसी लोभ के कारण अन्य से द्वेष, किसी को बहन के प्रति अति राग (शकुनि को अपनी बहन गान्धारी के पति ही चक्रवर्ती नरेश बनें इसी बात की धुन थी) किसी को दूसरे के अथाह बल से द्वेष, किसी को किसी की विद्या से द्वेष, किसी को किसी के ऐश्वर्य से द्वेष, किसी को पुत्र में राग, किसी को मित्र व भाई से द्वेष। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ राग होगा वहाँ द्वेष भी मुखर और परिपक्व रूप में होगा। कौरव-पांडव सभी इसी विष में झुलसते रहे, संघर्ष करते रहे।

रजोगुण की मात्रा जब भी अधिक बढ़ती है, तभी सतोगुण नष्ट होकर मनुष्य का विवेक गिरता है तथा राग और द्वेष यह विषैली नागिन सम्पूर्ण इन्द्रियों में अपना विष संचार करती है। किसी के अन्दर रजोगुण पनप रहा है यह परखने के लिये समर्थ स्वामी श्री रामदास जी ने 'हिन्दी दासबोध' नामक ग्रन्थ में दूसरे दशक के पाँचवे समास में रजोगुण-निरूपण बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है कि चतुर लोग सावधान होकर सुने कि जिस समय शरीर में रजोगुण आता है, उस समय मनुष्य का व्यवहार किस प्रकार का हो जाता है। -'यह सोचता है कि घर-गृहस्थी और सब कुछ तो मेरा है, इसमें ईश्वर कौन होता है और कहाँ से बड़ा बनकर आता है। जो केवल अपने माता-पिता, पत्नी, पुत्र, पुत्रवधु, कन्या की ही चिन्ता करता है वह रजोगुणी है। ऐसा मनुष्य यही चाहता है कि हम अच्छा खायें अच्छा पहने और अच्छी-अच्छी चीजों का व्यवहार करें तथा दूसरों की चीजों पर अधिकार करें। वह सोचता है कि कहाँ का धर्म, कहाँ का दान, कहाँ का जप और कहाँ का ध्यान। वह पाप-पुण्य का विचार नहीं करता। वह तीर्थ, व्रत, अतिथि, अभ्यागत आदि को कुछ नहीं समझता और उसके मन में अनाचार की ही बातें उठती हैं। वह धन-धान्य संचित करना चाहता है, द्रव्य में ही उसका मन आसक्त रहता है। वह अत्यन्त कृपण होता है। वह अपने को सबसे अधिक तरुण, सुन्दर, बलवान, चतुर और बड़ा समझता है। वह समझता है कि देश मेरा है, गाँव मेरा है, मकान मेरा है, जगह मेरी है। वह सोचता है कि चाहे दूसरों का सर्वस्व नष्ट हो जाये पर मेरा भला हो। उसके मन में कपट, मत्सर, तिरस्कार और काम आदि का विकार उत्पन्न होता रहता है। अपने बालकों पर उसकी ममता होती है। अपनी स्त्री उसे बहुत प्यारी लगती है। अपने सब आदमी उसे अच्छे लगते हैं। जिस समय मन में अपने आप्तजनों की चिन्ता रहे कि संसार से इन बड़े-बड़े कष्टों से कैसे निस्तार होगा, वह रजोगुणी है। उसे पहले भोगे हुए कष्टों का बार-बार ध्यान होता है और उनके लिये दुख होता है।

दूसरों का वैभव देखकर उसके मन में लालच उत्पन्न होता है और वह आशाओं के कारण दुखी होता है। रजोगुण के कारण आने वाली हर एक चीज पाने की इच्छा होती है और उनके न मिलने से उसे दुख होता है। विनोद और परिहास में उसका मन लगता

है, वह श्रृंगारिक गीत गाता है, राग–रंग उसको अच्छा लगता है। वह चुगली, चवाव और निन्दा करके झगड़ा खड़ा करता है और सदा हास्य विनोद करता है। नीचों की संगति उसे बहुत प्रिय लगती है। उसके मन में चोरी के भाव उठते हैं, दूसरों को तुच्छ ठहराने वाली बातें करना चाहता है और नित्य–नियम आदि में उसका मन नहीं लगता है। वह देवताओं के काम करने में लज्जित होता है पर उदर के लिये अनेक प्रकार के कष्ट उठाता है। प्रपंच उसे अच्छे लगते हैं। उसे सुन्दर और मीठे भोजन अधिक अच्छे लगते हैं। वह बड़े यतन से अपने शरीर का पोषण करता है, उपवास उसे अच्छा नहीं लगता। उसे श्रृंगारिक बातें अच्छी लगती हैं। सांसारिक पदार्थों पर उसकी प्रीति रहती है।"

उपर्युक्त सभी लक्षण रजोगुण व्यक्ति में पाये जाते हैं।

(क्रमशः)

***

शोक-संवेदना

— यह सूचित करते हुये अत्यन्त दुःख हो रहा है कि सती आश्रम भूषणपुरा की आचार्या बहिन स्वर्णलता का 30 सितम्बर 2005 को देहावसान हो गया है। वे गुरुदेव की गुरुबहिन आदरणीया महात्मा ऋषिदेवी जी की प्रमुख शिष्या थीं। उनके निधन पर सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है तथा श्रीप्रभु जी से प्रार्थना है कि उन्हें अपने अभय चरणों में स्थान दें।

— यह सूचित करते हुए दुःख है श्री रूपसिंह (ददद्दू जी) घरैरा (आगरा) वालों का गत सितम्बर माह में देहावसान हो गया। वे 92 वर्ष के थे। श्री प्रभुजी से प्रार्थना है कि उनके परिजनों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें। सिद्धयोग परिवार दुःख के इन क्षणों में हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

सम्पादक-सिद्धयोग

चिज्जड़ ग्रन्थि

प्रेषक—**जनक कुलश्रेष्ठ** (ग्वालियर)

चेतन (आत्मा) और जड़ (बुद्धि) के अविवेक पूर्ण संयोग हो जाने से जीव बना आत्मा अहंता और ममता के कारण संसार में बार–बार जन्म–मरण के चक्कर में पड़कर दुःख प्राप्त करता रहता है। विवेक जाग्रत होने पर इस संयोग का वियोग हो जाता है और जीव जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है।

जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई
जदपि मृषा छूटत कठिनई'' *मानस*

जो अपने को न जाने और अपने से भिन्न अन्यों को भी न जाने उसे जड़ कहते हैं। और जो अपने को जाने तथा अपने से भिन्न पदार्थों को जाने उसे चेतन कहते हैं।

जड़ और चेतन दोनों विरुद्ध स्वभाव वाले हैं। एक अंधकार है तो दूसरा प्रकाश। जड़ मिथ्या है और चेतन सत्य है। जड़ विकारी है, चेतन अविकारी है। जड़ अनित्य है और चेतन नित्य है। जड़ माया युक्त है और चेतन माया रहित है।

चेतन (पुरुष या आत्मा) दृष्टा है। जड़ (चित्त या बुद्धि) दृश्य है। पुरुष चेतन्य है, चित्त या बुद्धि जड़ है। पुरुष क्रिया रहित है, चित्त क्रिया वाला है। पुरुष केवल है और चित्त त्रिगुणात्मक है। पुरुष अपरिणामी है और चित्त परिणामी है। पुरुष स्वामी है और चित्त उसकी स्व अर्थात् मिल्कियत है। इस प्रकार दोनों ही तत्व भिन्न हैं। अविद्या के कारण दोनों के भेद की प्रतीति नहीं होती है।

जगत की उत्पत्ति जड़ और चेतन तत्व के संयोग से ही हुई है। चेतन तत्व ब्रह्म में जब एकोऽहम बहुस्यामि का ईक्षण हुआ तो अव्यक्त मूल प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने से सर्व प्रथम महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। महत्तत्व से अहंकार और अहंकार के तमोगुण से पंच तन्मात्राओं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध की उत्पत्ति हुई। इनसे पंच महाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

अहंकार के रजोगुण से व्यष्टि जगत की पाँच कर्मेन्द्रियों और सतोगुण से पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन (बुद्धि) की उत्पत्ति हुई। व्यष्टि रूप से चेतन आत्मा और जड़ बुद्धि के अविवेकपूर्ण संयोग से यह जड़ चेतन की ग्रन्थि पड़ गई।

इस संयोग का हेतु :–

स्व स्वामि शक्त्योः स्वरूपोपलब्धि हेतु संयोग। २/२३

चित्त और यह सारा जड़ (जगत) दृश्य स्व अर्थात् पुरुष (आत्मा) की मिल्कियत है। चेतन (आत्मा) उस जड़ दृश्य का स्वामी है। दृष्टा (आत्मा) ज्ञाता है और दृश्य ज्ञेय है। दृष्टा और दृश्य दोनों नित्य और व्यापक हैं। दृष्टा में भोग्यत्व और दृश्य में भोक्तृत्व अनादि

काल से है। दृष्टा के भोग्यत्व और दृश्य के भोक्तृत्व को ही संयोग कहा जाता है। यह संयोग अनादि काल से चला आ रहा है। इसी को हटाने के लिए स्वशक्ति और स्वामिशक्ति के स्वरूप की उपलब्धि की जाती है। अर्थात् दृश्य–प्रकृति के साथ चेतन–आत्म का सम्बन्ध उन दोनों के स्वरूप को जानने के लिए ही है। अतः जब तक मनुष्य इस प्रकृति के नाना रूपों को देखता या आकृष्ट होता है तब तक वह योगों को भोगता रहता है और जब इनसे विरक्त होकर स्वरूप की ओर देखता है तो साधक को स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। तात्पर्य यह है कि दृश्य के स्वरूप का साक्षात्कार करना भोग है और दृष्टा के स्वरूप की उपलब्धि स्वरूपस्थिति या अपवर्ग है। गीता में दृष्टा को क्षेत्रज्ञ तथा दृश्य को क्षेत्र कहा है।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। १३।।

दृष्टा और दृश्य का संयोग जैसे अनादि है वैसे अनन्त नहीं है। स्वरूप उपलब्धि से इस संयोग का अभाव हो जाता है। इस प्रकार आत्म साक्षात्कार संयोग के वियोग का कारण है। दृश्य के स्वरूप की उपलब्धि जो भोग रूप है सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा और पुरुष के स्वरूप की उपलब्धि असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा प्राप्त की जाती है।

इस अविवेकपूर्ण संयोग का कारण अविद्या है।

तस्य हेतुः अविद्या। २/२४

अविद्या अर्थात् मिथ्या ज्ञान। जो 'है' नहीं उसमें 'है' की प्रतीति होती है। और जो 'है' उसमें 'है नहीं' की प्रतीति होती है। यही अविद्या है। इसी अविद्या के कारण आत्मा और बुद्धि में विवेक न होने से अभिन्नता की प्रतीति होती है। और चित्त की सुख दुःख आदि वृत्तियाँ पुरुष में अध्यारोपित होती हैं। जिससे आत्मा अपने आपको कर्त्ता और भोक्ता जैसा मानने लगता है।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। ३/२७ गीता

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा किए जाते हैं फिर भी अहंकार से मोहित हुए अन्तःकरण वाला पुरुष "मैं कर्ता हूँ" ऐसा मान लेता है।

यह संयोग ही अविद्या से उत्पन्न अस्मिता क्लेश है।

दृग्दर्शन शक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। २/६

दृक शक्ति और दर्शन शक्ति का एक जैसा भान होना ही अस्मिता क्लेश है। अर्थात् आत्मा और बुद्धि में अविद्या के कारण एक जैसा भान होता है। यही अस्मिता क्लेश है। दृक् शक्ति अर्थात् दृष्टा (पुरुष) और दर्शन शक्ति अर्थात् बुद्धि ये दोनों भिन्न हैं। पुरुष चेतन और बुद्धि जड़ है। विरुद्ध स्वभाव वाले होने से ये दोनों एक हो ही नहीं सकते हैं। परन्तु अविद्या के कारण दोनों की एकता जान पड़ती है। इसी को हृदय ग्रन्थि या जड़

चेतन की गांठ कहते हैं। अस्मिता क्लेश का क्षेत्र अविद्या है। आत्मा और बुद्धि में भेद ज्ञान विवेक ख्याति कहलाती है।

इस अविद्या का दूसरा नाम माया है। एक वस्तु में दूसरी वस्तु की मिथ्या प्रतीति 'विवर्त' कहलाती है। इस प्रतीति को उत्पन्न करने वाला तत्व माया है। यह माया अपनी आवरण और विक्षेप दो शक्तियों द्वारा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को ढँक करके जगत की सृष्टि करती है।

जिस प्रकार आकाश में चंचल वायु उत्पन्न होती है। उसी प्रकार उस निराकार ब्रह्म में मूल माया उत्पन्न होती है; परन्तु वायु की चंचलता के कारण आकाश की निश्चलता भंग नहीं होती है। इसी प्रकार माया के कारण परमात्मा की निर्गुणता में कोई अन्तर नहीं आता है। मूल माया का रूप वायु की तरह ही है। वायु भासती तो है पर दिखाई नहीं देती है। वायु को सत्य तो कह सकते हैं, परन्तु दिखाई नहीं देती है। इसी प्रकार मूल माया भासती तो है, पर दिखाई नहीं देती है।

अविद्या माया का विस्तार है। जिस प्रकार वायु के कारण आकाश में धूल आदि उड़ती दिखाई देती है, उसी प्रकार मूल माया के कारण यह संसार दिखाई देता है। जिस प्रकार आकाश में अचानक बादल आ जाते हैं, उसी प्रकार माया के संयोग से यह संसार दिखाई देता है। और इसी कारण यह निर्गुण परमात्मा भी माया के कारण सगुण दिखाई देता है।

इस माया (अविद्या) की निवृत्ति विवेक ख्याति से होती है। आत्मा और बुद्धि की भिन्नता का ज्ञान होना ही विवेक ख्याति कहलाती है।

व्यष्टि रूप से आत्मा और बुद्धि के संयोग का कारण अविद्या अर्थात् मिथ्याज्ञान है, जिससे चेतन (आत्मा) और जड़ (बुद्धि) में विवेक न होने से अभिन्नता की प्रतीति होती है। अभिन्नता के कारण ही जीव अनात्म को आत्मा, अनित्य को नित्य और अपवित्र को पवित्र समझने लगता है। इसका कारण यह है कि चेतन आत्मा का प्रकाश जड़ बुद्धि का इस बिम्ब का प्रतिबिम्ब आत्मा पर पड़ता है। परिणामतः भूलवश आत्मा की चेतनता को बुद्धि अपने आपमें समझने लगती है और बुद्धि की जड़ता को आत्मा अपने आपमें समझने लगती है। इसको इस प्रकार समझना चाहिए जैसे एक लोह पिण्ड जब अग्नि में तपाया जाता है तब गोला लाल हो जाता है। फलतः लोह पिण्ड अपने को अग्नि स्वरूप समझने लगता है तथा अग्नि अपने को गोलाकार समझने लगती है। इसी प्रकार आत्मा और बुद्धि दोनों ही अपने अपने गुण–धर्म को भूल जाते है। यही जड़ चेतन की गांठ है।

इस जड़–चेतन की गांठ को छुड़ाने के लिए श्री गोस्वामी तुलसी दास ने उपाय बताया है–

जप-तप जम नियम अपारा, जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।

अर्थात् जप, तप, यम, नियमादि की साधना करते हुए, धारणा, ध्यान, समाधि के द्वारा विवेक ख्याति को जाग्रत करने से यह ग्रन्थि छूट जाती है।

✿✿✿

(सत्य घटना)

दो शब्द गुरुभाइयों से

उचित नारायण तिवारी (कानपुर)

इस अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगन्नियन्ता की सृष्टि में अण्डज, पिण्डज, उष्मज, स्वेदज ये चार प्रकार के जीव पाये जाते हैं। पिण्डज के अन्तर्गत मानव सर्वश्रेष्ठ ईश्वर की रचना है। जिसे कर्तव्य–अकर्तव्य, उचित–अनुचित, धर्म–अधर्म का ज्ञान होता है। भर्तृहरि महाराज ने अपने शतकत्रय के किसी अंश में उद्घोषित किया है "धर्मेण हीनः पशुभिः समाना"। धर्म से हीन मानव पशु के समान है। अस्तु धर्म धारण करने योग्य आचरण है तभी मनुष्य अपनी सरस्वती सही रख सकता है। और जिसकी सरस्वती सही होती है वे ही इस जगत के भव रोगों से निकल पाता है। अन्यथा नहीं।

मैं इसी व्यथा से चिंतित रहा करता था। तभी एक मित्र श्री डी. एन. झारखरिया (झांसी निवासी) ने महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज संवाई सिद्धगुफा, एत्मादपुर आगरा के सम्बन्ध में बताया। उस समय मैं झांसी जनपद में कार्यरत राजकीय कर्मचारी था। मैं मौका मिलते ही अपने परिवार के साथ संवाई सिद्धगुफा आया और महाप्रभु का जैसे ही मैंने स्वरूप देखा तो भाव–विभोर हो गया और तत्काल जानकारी लेने लगा कि इनकी दीक्षा कैसे प्राप्त हो। इनके दर्शन कहां होंगे ? तभी पूज्य गुरुदेव ने कहा कि "लल्ला तुम सिद्ध गुफा में रुको अथवा हमारे साथ ग्वालियर चलो वहीं हम तुम्हें दीक्षा देंगे। हम माध्यम हैं किन्तु गुरुदेव महाप्रभु जी ही हैं।" उन्हीं के साथ फिर मैं सपरिवार ग्वालियर गया। वहां कई दिनों का कार्यक्रम था। दो या तीन दिन बाद गुरुदेव बोले "आज का दिन बहुत शुभ है सायंकाल हम तुम्हें दीक्षा प्रदान करेंगे।"

सायंकाल मुझे सपत्नीक दीक्षा प्रदान की गई। महाप्रभु एवं पूज्य गुरुदेव जी का स्वरूप दिया गया। ये बात सन् १९७७ की है। कार्यक्रम समाप्त होने पर हम लोग घर लौट आये तथा स्वरूप को फ्रेम कराकर पूजा स्थल में स्थापित कर दिया। किन्तु जिज्ञासा का हल नहीं हुआ। गुरु चिंतन बराबर चलने लगा, अचानक एक दिन एक अनोखी घटना घटी। मैं चिरगांव जिला झांसी में रहता था अपने निवास जा रहा था। रास्ते में चिरगांव का थाना रोड के किनारे स्थित है। अचानक मेरे दिमाग में आया कि मैं थाने चलूँ किन्तु दूसरी तरफ ये भी विचार आ रहा था कि आखिर थाने क्यों चलें ? घर चलूँ और अपना काम देखूँ। परन्तु प्रबल सम्प्रेषण के कारण मुझे थाने जाना पड़ा। मैंने देखा कि थाने के दरवाजे पर पहरेदार नहीं हैं। अन्दर गया तो कार्यालय थाना इंचार्ज कक्ष व बैरकें पूरा

थाना खाली पड़ा था। मैं बड़बड़ाता हुआ कि क्या जमाना आ गया है कि थाने में कोई नहीं हैं। इनके मालखाने से या थाने से कोई वस्तु चोरी जा सकती है। तभी मेरी दृष्टि एक बैरक के दरवाजे पर पड़ी जहाँ एक सिपाही खड़ा था, वो जाति का मुसलमान सिपाही था मेरी बात सुनकर उसने कहा कि हमारा समय तो गुजर गया। आज नौकरी का आखरी दिन है कल से सेवानिवृत्त हो जाऊँगा। समय बदल गया है। उसके बाद मैं थाने से जैसे ही बाहर आया तो दरवाजे के बगल में दो कुर्सी डाले एक सरदार जी बैठे थे। दूसरी कुर्सी खाली थी। उनसे मैं बोला "सरदार जी आपको किससे मिलना है ? थाने में कोई भी नहीं है। तो सरदार जी बोले आइये हम आपसे ही मिलेंगे। मैंने कहा सरदार जी मजाक न करिये जिससे मिलना हो बतायें, अन्यथा आप बैठे रहेंगे थाना पूरा खाली है। दोबारा बोले हम तुम्हीं से मिलना चाहते हैं।

मैं जाकर उनके पास बैठ गया। वार्ता होने लगी वो बोले ये रोड का किनारा है, चलो अन्दर बैठें। सरदार जी उठकर थाना इंचार्ज के कमरे में गये और उनकी कुर्सी पर बैठ गये। मैं भी उनके बगल में बैठ गया। मैंने कहा कि सरदार जी इस कुर्सी पर न बैठें। दरोगा बहुत जल्लाद किस्म का है मुल्जिमों के करंट लगाता है और बेलन चढ़ा देता है। तब सरदार जी बड़े रौब से बोले चिन्ता मत करो इस समय मैं ही थाना इंचार्ज हूँ। जब तक हम तुम रहेंगे तब तक कोई भी यहाँ नहीं आ सकता। तत्काल बड़ी गम्भीर मुद्रा में बोले कि तुम महाप्रभु रामलाल जी से मिलना चाहते हो। मैंने हाँ में जवाब देते हुये उनसे प्रश्न किया कि यह आप कैसे जानते हैं ? तब सरदार जी बोले मैं पूरे विश्व में घूमता हूँ और इंटरनेशनल एस्ट्रौलॉजर हूँ। मुझे मालूम हो जाता है। तब उन्होंने अपने पास से एक विजिटिंग कार्ड दिया और कहा कि मुझे उन्हीं ने भेजा है और मैं तुम्हें महाप्रभु जी का पता बताने आया हूँ किन्तु इसके पहले तुम घर जाकर उनका स्वरूप ले आओ। थाने के पास ही मेरा निवास है। मैं तुरन्त महाप्रभु जी का स्वरूप लेकर आ गया। उन्होंने देखा और छाती से लगाकर तथा चूमकर मुझे वापस कर दिया तब बताया कि महाप्रभु जी गण्डक नदी के किनारे मुक्तिनाथ में रहते हैं। रास्ता बहुत दुर्गम है। तुम जब भी जाना तो गोरखपुर होते हुये नेपाल में भैरवा एयरपोर्ट पहुँचना। वहाँ पहुँचकर किसी पेड़ के नीचे बैठकर उनका ध्यान करना तब कोई न कोई तुम्हें लेने आयेगा। उसके साथ जाना क्योंकि रास्ते में कहीं-कहीं दलदली भूमि है अन्जान आदमी दलदल में फँस जाता है।

यहाँ तक कि सरदार जी ने मुझे मात्र पन्द्रह सौ रू० लेकर जाने के लिये कहा। मुझे प्रभु जी का पता मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तुरन्त दौड़कर पास से शुद्ध घी के रसगुल्ले तथा फल लेकर आया और जलपान कराया। थाने के अन्दर एक दरोगा जी के घर से पानी लाया। घर में भी कोई नहीं था, जबकि वहाँ दरोगा जी सपरिवार रहते थे। इसके बाद तुरन्त उठे बोले मेरा काम हो गया मैं अब वापस जाऊँगा। मैंने घर चलने के

लिए भी प्रार्थना की परन्तु वे राजी न हुये और जाकर एक झांसी जाने वाली रोडवेज बस में बैठ गये। जाते समय उन्होंने यह भी कहा कि यदि तुम मुक्तिनाथ नहीं भी जाओगे तो जिस कार्य के लिये महाप्रभु के पास जाना चाहते हो वो तुम्हें तीन वर्ष के अन्दर यहीं प्राप्त हो जायेगा।

यह बात जब मैं सिद्ध गुफा आया तो पूज्य गुरुदेव से चर्चा की तो उन्होंने कहा लल्ला वह महाप्रभु जी ही थे। जिसके ऊपर उनकी कृपा होती है, वो कई भेषों में अलग–अलग अपने भक्तों का उद्धार एवं मार्गदर्शन करते रहते हैं।

अब अगले लेख में तीन वर्ष के अन्तर्गत जो मेरे साथ घटनाएँ घटीं उनको अपने गुरु भाइयों के समक्ष लेख के माध्यम से अवगत करता रहूँगा। साथ–साथ रामलाल महाप्रभुजी के द्वारा स्वरचित कविता जो मुझे कल्याण के बहुत पुराने अंकों में प्राप्त हुई थी। उसे मैं यहाँ दे रहा हूँ। ताकि मेरे गुरु भाई इसे पढ़कर आत्मसात कर सकें।

झरैं फुलझरी बरैं मसाला, दरसै अमृत ज्योति रसाला।
दसहि दशा महं दामिन दमकै, दहिने बाम रवि चन्दा चमकै।
हरति चक्र त्रिकुटि रह छाई, फनिपति रूप अजब दरसाई।
श्याम स्वरूप निरंजन झलकै, दीपशिखा सम माया दमकै।
त्रिगुन त्रिदेव बहुत दरसाही, रंग अरंग बरनि नहिं जाहीं।
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड तमासा, रामलाल चढ़ि लखत अकासा।
मूलमंत्र करि बेध विचारी, षट चक्रहिं नव सोधहिं नारी।
साधि के मेरूदण्ड ठहराना, सहज मिलावें प्रान अपाना।
बंक नाल गहै मन मूला, विहंसत अष्ट कमल दल फूला।
पश्चिम दिसा लागि किमारी, सत् कुंजी सब लेत उघारी।
जस मकरी का लागा तागा, वैसेहि प्रेम बढ़े अनुरागा।
उल्टा पवन चढ़ै सतमीना, है सतगुरु का मारग झीना।
अजपा-जपा जिकिर धुनिध्याना, संधि सबद मह पवन समाना।
आदी शब्द ॐ है ऊँकारा, उठै शब्द धुनि सरकारा।
दसौ दिसा होइगे उजियारा, झलकत, जगमग ज्योति अपारा।
गैबि मिलै जग गैब समाना, हवै अलमस्त अभी रस पाना।
काल दण्ड नाही जन आसा, देखत गैबी, गैब तमासा।
जो अस चलै सून्य मिल जाई, ताकर आवागमन नसाई।
रामलाल कोऊ विरला पावा, निरधन धनी निसान नचावा।

✿ ✿ ✿

कालगणना

जे. पी. शर्मा, पाँटवा साहिब (हि० प्र०)

ब्रह्माण्ड सृजन के साथ ही काल सृजन हुआ। काल के बिना कोई अछूता नहीं है। काल बोध हमेशा साथ चलता है। जीव–निर्जीव काल से प्रभावित है। काल समय का ज्ञान कराता है तथा काल मृत्यु सूचक भी है। काल की दया प्रसन्नता ही जीवन है तथा काल कोप मृत्यु है। ब्रह्माण्ड का आदि और अन्त काल ही है।

काल कभी रुकता नहीं है। हमेशा गतिशील रहता है। इसलिये चलते रहना ही काल का पर्याय है। प्रकृति में काल कब आया तथा काल क्या है। हिन्दू मनीषियों ने इस पर गहराई से चिन्तन किया। उन्होंने काल को द्रव्य माना है। महर्षि कणाद कहते हैं– **पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।**

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिग् आत्मा और मन ये द्रव्य हैं। निःश्रेयस की प्राप्ति के इनके तत्व ज्ञान की पूर्ण जानकारी होना अनिवार्य है।

काल शब्द की व्युत्पत्ति गत्यर्थक कल धातु से घत्र प्रत्यय लगाने से होती है। इससे ज्ञात होता है कि काल का सम्बन्ध गति से है। ईश्वर सब को गति प्रदान करता है। उसका नाम ही काल है। हिरण्यगर्भ के विस्फोटित विश्व द्रव्य के मूल पदार्थ के गतिमान होने पर ही काल का बोध होता है। जब तक परिवर्तनशील अथवा गतिशील पदार्थ नहीं बनता तब तक काल का अस्तित्व सम्भव नहीं है। सृष्टि क्रम चलने पर ही काल का भान होता है।

काल के दो रूप होते हैं। मूर्तकाल एवं अमूर्त काल। मूर्त काल वह है जो लव, निमेष, युग के रूप मे [illegible] में आता है। घड़ी की सुई से बनने वाले मिनटों और घंटों की तरह काल प्रगति का फल है। इसके पीछे की प्रेरणाशक्ति अमूर्त या अव्यक्त काल कहते हैं।

भारतीय इतिहास कोई हजार–दो हजार वर्षों का नहीं अपितु यह काल चक्र की स्थापना के बिन्दू से शुद्ध होकर करोड़ वर्षों का है। अतः काल और इतिहास का अंगांगी सम्बन्ध है। काल बिम्ब है तो इतिहास प्रतिबिम्ब है। अतः काल ही इतिहास और इतिहास ही काल है।

श्रीमद्भागवत् में काल की सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़ी काल इकाइयों का वर्णन किया गया है। काल की अति सूक्ष्म इकाई परमाणु तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाली इकाई महाकल्प है। परमाणु से दिनमान पर्यन्त १२ छोटी काल इकाइयाँ निम्न प्रकार हैं–

१. २ परमाणु = १ अणु
२. ३ अणु = १ त्रसेणु

३.	३ त्रसेणु	=	१ त्रुटि (एक सैकेंड का ३३७५० वां भाग)
४.	१०० त्रुटि	=	१ वेध
५.	३ वेध	=	१ लव
६.	३ लव	=	१ निमेष
७.	३ निमेष	=	१ क्षण
८.	५ क्षण	=	१ काष्ठा
९.	१५ काष्ठा	=	१ लघु
१०.	१५ लघु	=	१ नाडिका
११.	६ नाडिका	=	१ प्रहर
१२.	८ प्रहर	=	१ दिन-रात
१३.	१५ दिन	=	१ पक्ष (शुक्ल या कृष्ण होते हैं)
१४.	२ पक्ष	=	१ माह
१५.	२ माह	=	१ ऋतु
१६.	६ मास	=	१ अयन (उत्तरायन अथवा दक्षिणायन)
१७.	२ अयन	=	१ वर्ष (देवताओं का एक दिन-रात)
१८.	३६० वर्ष	=	देवताओं का एक वर्ष

युगमान काल

१. कलयुग	१२०० दिव्य वर्ष	४,३२,००० मनुष्य वर्ष
२. द्वापर	२४०० दिव्य वर्ष	८,६४,००० मनुष्य वर्ष
३. त्रेता	३६०० दिव्य वर्ष	१२,९६,००० मनुष्य वर्ष
४. सत्ययुग	४८,०० दिव्य वर्ष	१७,२८,००० मनुष्य वर्ष

दिनमान :-

१. सावन दिन :- पृथ्वी की सूर्य में दो प्रकार की गतियाँ हैं। पहली गति में पृथ्वी अपनी कक्षा की धुरी पर १६०० किलोमीटर प्रति घंटे की चाल से घूमती है। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक २४ घंटे का समय लगता है। १२ घंटे पृथ्वी का पूर्वार्ध सूर्य के सामने रहता है। उसे दिन कहा जाता है। जो भाग सूर्य के पीछे रहता है उसे रात कहते हैं।

२. सौर दिन :- दूसरी गति में पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा १ लाख किलोमीटर प्रति घंटे की गति से ३६५.२५ दिनों में पूरा करती है। पृथ्वी की कक्षा को ३६० अंशों में विभक्त किया जाय तो पृथ्वी को अपनी कक्षा पर एक अंश चलना एक सौर दिन कहलायेगा। सौर दिन सावन दिन से २१ मिनट बड़ा होता है।

३. चान्द्र दिन :- पृथ्वी का भ्रमण करते हुये चन्द्रमा का १२ अंश तक का एक चलन एक तिथि अथवा एक चान्द्र दिन होता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य से

ठीक नीचे होता है। यह तिथि ० अंश कहलाती है। उस समय चन्द्रमा सूर्य के निकट होता है। बाद में सूर्य से १२ अंश के हिसाब से दूर होता चला जाता है। १२ अंश का समय एक तिथि या दिन कहलाता है। जब चन्द्रमा सूर्य से १८० अंश दूर होता है उसे पूर्णिमा कहते हैं। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा १२ अंश के हिसाब से सूर्य के निकट जाना शुरू करता है। उसे कृष्ण पक्ष की तिथि या दिन कहते हैं। इस तरह कृष्ण और शुक्ल पक्षों का निर्माण होता है। इन दोनों पक्षों के दिनों से चन्द्र मास बनता है।

४. नाक्षत्र दिन :– पश्चिम से पूर्व की तरफ पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। जब पृथ्वी का कोई निश्चित स्थान किसी निश्चित नक्षत्र के सामने आ जाता है तो नक्षत्रों का एक चक्र पूरा हो जाने को नक्षत्र दिन कहते हैं।

दिन अथवा वार का प्रारम्भ :–

१. सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का प्रारम्भ अर्ध रात्रि से हुआ है। अधिकांश देश दिन का प्रारम्भ अर्धरात्रि से ही मानते हैं। परन्तु आर्य भट्ट प्रथम तथा आचार्य भास्कर सूर्योदय से ही दिन का प्रारम्भ मानते हैं। आजकल दोनों ही मान्यतायें प्रचलित हैं।

२. सप्ताह मान :– सप्ताह में सात दिन होते हैं। पृथ्वी को जो ग्रह प्रभावित करते हैं उनके नाम पर सप्ताह के दिनों का नामकरण किया गया है।

३. मासमान :– ३६० अंश वाले पृथ्वी के कक्षाचक्र को १२ भागों में विभक्त करके ३० अंश वाले भाग को मास कहा गया है।

४. वर्षमान :– पृथ्वी एक लाख किलोमीटर प्रतिघंटे की गति से सूर्य की परिक्रमा ३६५.२५ दिनों में पूरा करती है। इस काल अवधि को वर्ष माना गया है। १६७ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमने में ३६० दिन लगाती थी। इसी लिये मनीषियों ने पृथ्वी को ३६० अंशों में विभक्त किया तथा वर्ष में ३६० दिन अथवा ७२० दिन-रात माने गये। वर्तमान कल्पारम्भ में भी वर्ष के ३६० दिनों की मान्यता को बनाये रखा गया है। सृष्टि का प्रारम्भ चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से माना गया है।

युगमान–

१. पंचवर्षीय युगमान :– वर्ष से बड़ी कालगणना के लिये सूर्य और चन्द्रमा के एक ही नक्षत्र में योग को आधार बनाया गया है। जब सूर्य और चन्द्रमा की युति पाँच वर्षों बाद उसी नक्षत्र में होती है। उस कालावधि को पाँच वर्षीय युग युगमान माना गया।

२. बाहर वर्षीय युग :– बृहस्पति को एक राशि पार करने में एक वर्ष का समय लगता है। अतः १२ राशियाँ पार करने में १२ वर्ष लगते हैं। इस कालावधि को बारहवर्षीय युग कहा गया।

३. साठ वर्षीय युग :– युग की सीमा को और बड़ा करने के लिये पाँच वर्षीय युग का परिगणन बृहस्पति के संदर्भ में किया गया था। बृहस्पति का एक गणनाचक्र बारह वर्षों में पूरा होता है। तथा पाँच गणना चक्रों का युग माना जाता था। अतः गणना चक्रों का काल १२ x ५ = ६० वर्ष होता है। अश्विनी नक्षत्र से प्रारम्भ होने वाले ६० वर्षीय युग के आरम्भ का काल कल्प से है। परन्तु धनिष्ठा नक्षत्र से प्रारंभ होने वाले इस ६० वर्षीय युग का आरम्भ कल्प के आरंभ से ८६ करोड़ ६० लाख वर्ष बाद हुआ। यह कल्प में केवल ५ बार घटित होता है।

चतुर्युगमान

१. कलियुग, द्वापर, त्रेता तथा सतयुग की पूर्ण कालावधि ४३,२०,००० वर्ष है। इसे महायुग भी कहा जाता है। कल्प के आरम्भ में पृथ्वी को प्रभावित करने वाले सातों ग्रह अपने भोग और शर के साथ एक साथ थे। उन्होंने घूमना शुरु किया तथा ४,३२,००० वर्षों बाद पुनः उसी स्थान पर आ गये। अतः उनकी इस प्रथम युति को कलियुग कहा गया। दूसरी युति को द्वापर, तृतीय को त्रेता तथा चौथी को सत्ययुग कहा गया। चारों युगों को मिलाकर एक चतुर्युग अथवा महायुग कहा गया।

२. मन्वन्तर मान :– चतुर्युग के अतिरिक्त हिन्दू मनीषियों ने और भी लम्बे अवधि वाले मन्वन्तर मान का निर्माण किया गया। इसका आधार जगतक्रम के परिवर्तन और पृथ्वी की ध्रुवता के परिवर्तन में लगने वाले काल को बनाया। सृष्टि का बदल ३०,८४,४८,००० वर्षों में होता है। इस कालावधि को मनु या मन्वन्तर कहा गया है। यह एक मनु की आयु है।

ऋष्टि में पाँच मंडल खोजे गये हैं। चन्द्र मण्डल, पृथ्वी मंडल, सूर्य मंडल, परमेष्ठि मंडल और स्वांयम्भुव मंडल सभी पाँचों मंडल एक दूसरे के गिर्द घूमते हैं। अर्थात् चन्द्र मंडल पृथ्वी मंडल के, पृथ्वी मंडल सूर्य मंडल के, सूर्य मंडल परमेष्टि मंडल के तथा परमेष्ठि मंडल स्वायम्भुव मंडल का परिभ्रमण करते हैं। यह भ्रमण ही कालखण्डों का निर्माता है। वास्तव में सूर्य का परमेष्ठि मंडल का परिभ्रमण ही पृथ्वी की ध्रुवता और दिशा क्रम के परिवर्तन का कारण है।

सूर्य मंडल परमेष्ठि मंडल का परिभ्रमण ७१ चतुर्युगीय कालावधि अर्थात् ३०,६७,२०,००० वर्षों में पूरा करता है। गणना की दृष्टि से इसमें १७,२८,००० वर्ष का एक संधि काल जोड़ा जाता है। यह जोड़ ३०,६७,२०,००० + १७,२८,००० = ३०,८४,४८०० वर्ष है। इस कालावधि में एक मनु की आयु पूरी हो जाती है।

३. कल्पमान :– कल्पमान १४ मनुओं की आयु पूरी होने पर बनता है। अर्थात्

३०,६७,२०,००० x १४ + १७,२८,००० x १५ = ४,३२,००,००,००० वर्ष है। एक कल्पावधि ब्रह्मा जी का एक दिन होता है। दूसरे कल्प की अवधि एक रात होती है। गणना निम्न प्रकार है।

१. ब्रह्माजी का एक दिन	=	१ कल्प	= ४,३२,००,००,००० वर्ष
२. ब्रह्माजी की एक रात्रि	=	१ कल्प	= ४,३२,००,००,००० वर्ष
३. ब्रह्माजी का दिन–रात	=	२ कल्प	= ८,६४,००,००,००० वर्ष
४. ब्रह्माजी का एक मास	=	३० x ८,६४,००,००,००० अर्थात्	
		२,५६,२०,००,००,००० वर्ष	
५. ब्रह्माजी का एक वर्ष	=	२,५६,२०,००,००,००० x १२	
	=	३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष	
६. ब्रह्माजी की कुल आयु	=	३१,१०,४०,००,००,००० x १००	
	=	३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष होती है।	

अब तक ब्रह्माजी ने अपने आयु के ५० वर्ष (प्रथम परार्द्ध) १५ नील ५५ खरब २० अरब वर्ष पूर्ण कर लिये हैं। तथा द्वितीय परार्द्ध के ५१वें वर्ष वर्तमान श्वेत वाराह कल्प में प्रवेश किया है। ब्रह्मा की कुल आयु सारे ब्रह्माण्ड की आयु होती है।

मनीषियों ने काल की छोटी १२ इकाइयों के बाद दिनमान, पक्षमान, मासमान, वर्षमान, युगमान, चतुर्युगमान, मन्वन्तर मान, कल्पमान और महाकल्पमान (१०० वर्ष) की बड़ी इकाइयों का निर्माण किया है। काल के इन भेदों का अनन्तकाल के साथ जो सम्बन्ध है उसे पुराणकारों ने लोमश ऋषि की कल्पना से प्रकट किया है।

एक ऋष्टि ब्रह्मा ही का दिन तथा एक प्रलय काल ब्रह्मा जी की रात्रि है। ऐसे दिन रात जोड़ कर १०० वर्ष पूरे हो जाने पर ब्रह्मा जी की आयु पूरी हो जाती है। तब नये ब्रह्मा जी की उत्पत्ति होती है। लोमश ऋषि ब्रह्माजी के पुत्र हैं। लोमश ऋषि का एक दिन ब्रह्मा जी की पूर्ण आयु है। अतः लोमश को प्रतिदिन अपने पिता का श्राद्ध करना पड़ता है। इसके लिये लोमश सारे सिर का क्षौर न कराकर अपने सिर का एक बाल उखाड़कर फेंक देते हैं। अतः लोमश ऋषि के एक–एक रोम में एक–एक ब्रह्मा जी की आयु के बराबर काल की सत्ता समाई हुई है। लोमश के शरीर के रोम कौन गिन सकता है। अतः लोमश की आयु अनन्त है। अनन्तकाल का नाम करने में भला कौन समर्थ हो सकता है। दोनों की कल्पना से बुद्धि भी चकरा जाती है। अतः काल और देश, जीवन और चैतन्य, अनन्ता और नित्यता, अगम्य और अचिंत्य रहस्य है।

इसी तरह भगवान विष्णु की आयु १०० ब्रह्माओं की आयु के बराबर तथा भोले भंडारी शिव की आयु अनन्त व १०० विष्णु की आयु के तुल्य बताई गई है।

✿ ✿ ✿

पूज्य गुरुदेव
श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
द्वारा रचित

'योग सिद्धान्त'

(दो खण्डों में)

पूज्य गुरुदेव योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा रचित यह ग्रन्थ यौगिक विश्व को एक अनुपम देन है। योग की जटिलतम ग्रन्थियों को खोलने की क्षमता रखने वाली यह पुस्तक सरल भाषा में है, ताकि सामान्य जन भी योग के गूढ़तम रहस्यों को सुगमता से समझ व आत्मसात् कर सकें और योग मार्ग पर अग्रसित होकर अपने जीवन को सफल बना सकें।

पिछले कुछ समय से इस कल्याणकारी ग्रन्थ के दोनों खण्ड अनुपलब्ध थे, किन्तु जिज्ञासु पाठकों एवं साधकों के लिए अब ये पुनः उपलब्ध हैं। प्रत्येक खण्ड का मूल्य एक सौ रुपये है। डाक व्यय में हो रही उत्तरोत्तर वृद्धि एवं पुस्तक प्राप्ति की सुनिश्चितता के लिए पाठकों को चाहिये कि वे या तो स्वयं आकर अथवा किसी अन्य माध्यम से दो सौ रुपये (दोनों खण्डों का मूल्य) भेजकर पुस्तक यथाशीघ्र प्राप्त कर लें।

– सम्पादक, सिद्धयोग

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008 November, 2005

प्रधान कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

**न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।**

अर्थात्–नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा, न तो जन्मता है और न मरता ही है, यह न तो स्वयं किसी से हुआ है न इससे कोई भी हुआ है अर्थात् यह न तो किसी का कार्य है और न कारण ही है। यह अजन्मा नित्य सदा एकरस रहने वाला और पुरातन है अर्थात् क्षय और वृद्धि से रहित है। शरीर के नाश किये जाने पर भी नाश नहीं किया जा सकता।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा